# वैदिक वाङ्मय में मरूद्गण के साथ अन्य देवों के सम्बन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि
हेतु प्रस्तुत

**शोध-प्रबन्ध**

*पर्यवेक्षक :*
**डॉ० चन्द्रभूषण मिश्र**
पूर्व आचार्य, सस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

*प्रस्तुतकर्त्ता :*
**राम कुमार राय**
एम ए (वेद)
बी.एड, एल एल बी
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

**संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग**
**इलाहाबाद विश्वविद्यालय,**
**इलाहाबाद,**
**2002**

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

# प्राक्कथन

सर्वविदित है कि वसुधा पर भारतवर्ष की गौरवमयी प्रतिष्ठा में वैदिक संस्कृत वाङ्मय तथा भारतीय सस्कृति का अद्वितीय योगदान रहा है। वैदिक देवताओं के विवेचन की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है। प्रारम्भिक मानव ऐसी किसी भी वस्तु या घटना से अभिभूत हुआ, जो उसके जीवन-मार्ग में साधक या बाधक रूप में उपस्थित हुयी, ऐसी वस्तुओं, घटनाओं अथवा प्रकृति के विविध स्वरूपों को अपने से कहीं अधिक शक्ति-सम्पन्न समझते हुए, मानव इनके सामने नतमस्तक हुआ और इनके लिये उसके मुख से स्तुतियाँ निकल पड़ी । ऐसी विभिन्न स्तुतियाँ मन्त्रों, ऋचाओं या श्लोक के रूप में वैदिक वाङ्मय में व्याप्त है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इनमें देवताओं का विवेचन है, जिनका विश्लेषण, वर्गीकरण और साथ ही स्पष्टीकरण आवश्यक है। तुलनात्मक देवशास्त्र का अनुसन्धान वैदिक अध्ययन के क्षेत्र को अधिक समृद्ध करता है। धर्म, संस्कृति एवं देवशास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों में सामूहिक रूप से मरुद्गण की चर्चा है, वहीं अनेक विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से भी मरुद्गण सम्बन्धी देवशास्त्र पर विचार किया है।

विद्यार्थी जीवन से ही वैदिक देवताओं के प्रति सहज श्रद्धावनत होने के कारण उनके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्ति करने की उत्कट अभिलाषा रही। तदन्तर एम0ए0 संस्कृत की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर

शोध-कार्य की ओर प्रवृत्त हुआ। सर्वप्रथम समस्या योग्य तथा अनुभवी निर्देशक के चयन की थी। सौभाग्य से परमेश्वर ने मेरी इस कठिनाई को स्वयं हल कर मुझे सौहार्द्रपूर्ण एवं सुयोग्य गुरूवर्य डॉ0 चन्द्र भूषण मिश्र जी का निर्देशकत्व प्राप्त कराया, जिनके निर्देशन में मैनें शोध कार्य का श्रीगणेश किया। शोध कार्य में गुरूदेव डॉ0 मिश्र जी का जो पुत्रवत् स्नेह प्राप्त हुआ, वह यावज्जीवन स्मरण रहेगा। इस शोध प्रबन्ध में जो अच्छाइयाँ है वह गुरूदेव की है तथा जो कमियाँ है वह हमारी अपनी है।

इस शोध-प्रबन्ध के सम्पादन में जिन मनीषियों के ग्रन्थों का मैंने उपयोग किया उन सबके प्रति मै हृदय से विनत हूँ । विभागीय उन समस्त गुरूजनों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपने बहुमूल्य परामर्शो एवं सत्प्रेरणाओं के द्वारा शोधकर्त्ता के मार्ग को प्रशस्त किया। अस्तु विभागाध्यक्ष प्रो0 मृदुला त्रिपाठी, प्रो0 राजलक्ष्मी वर्मा, डॉ0 राम किशोर शास्त्री, डॉ0 शंकर दयाल द्विवेदी, डॉ0 कौशल किशोर श्रीवास्तव, डॉ0 उमाकान्त यादव, आचार्य कमला शंकर पाण्डेय (विभागाध्यक्ष, बिनानी कालेज) आदि का मै आभार व्यक्त करता हूँ ।

मेरे इस प्रयत्न का साकार रूप देने में डॉ0 राजेश सिंह (प्रवक्ता) श्री अनिरुद्ध उपाध्याय, कमल देव शर्मा, ललित मिश्र, प्राचार्य अरविन्द त्रिपाठी, श्री दिनेश सिंह, अमित, मनोज, रोहित, धर्मेन्द्र तथा धनंजय प्रभृति ने भरपूर सहयोग दिया और समय-समय पर मेरा उत्साह वर्धन किया जिसके लिए मै उनका कृतज्ञ हूँ ।

तत्पश्चात् मैं परम पूज्य पितामह श्री सत्यदेव राय, श्री यज्ञदेव राय (प्रबन्धक), दादी श्रीमती प्रभावती राय के प्रति अत्यधिक श्रद्धावनत हूँ। पूजनीय पिता श्री राम बचन राय तथा माता श्रीमती भानुमती राय के वात्सल्य से अनुगृहीत हूँ । सदैव सहयोग हेतु पूजनीय चाचा श्री घनश्याम राय (अपर मुख्य अधिकारी) तथा चाची श्रीमती शीला राय के प्रति कृतज्ञता-भार से मेरा मस्तक सदैव नत रहेगा और मैं उनका आजीवन ऋणी रहूँगा । अग्रज श्री कृष्ण कुमार राय (कम्प्यूटर इंजीनियर) व भाभी श्रीमती रेनु राय (एम0ए0), श्री सत्येन्द्र राय (पी.सी.एस.एलाइड), संगीता राय, दीपशिखा, प्रीति, मालविका का योगदान सराहनीय रहा जिनसे मुझे शोध कार्य करने की सतत प्रेरणा मिलती रही। इसके पश्चात् मैं नलिनी कम्प्यूटर के श्री सक्सेना जी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने सहयोगी श्री शेखर यादव द्वारा टंकण कार्य कराके शोध प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत किया।

अब प्रश्न यह उठता है कि इतने अध्ययनों के पश्चात् भी नये अनुसंधान की आवश्यकता क्या हो सकती है? कहा जा सकता है कि विगत वर्षो में जो कार्य हुआ है वह अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी सदैव कुछ नये ढंग से विचार करने की प्रेरणायें भी प्रदान करता है। मरुतों से सम्बन्धित देवशास्त्र पर जो भी विचार व्यक्त किये गये है, उनमें बहुत से ऐसी बातें रह गयी हैं, जो नये-नये अनुसंधानों को अवकाश प्रदान करती है तथा नये परिप्रेक्ष्य में विचारों का प्रकटीकरण अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। अतएव इस अनुसंधान में वैदिक वाङ्मय के समस्त

ग्रन्थो संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक आदि के क्रम में, काल-क्रम के अनुरूप मरुद्गण के साथ अन्य देवों के सम्बन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन का प्रयास हुआ है। देवों से सम्बन्धित जितने भी ऋग्वेदीय मंत्र हैं, उनकी सम्यक् समीक्षा द्वारा विकास की धारा के प्रवाह में डूबकर देवताओं की गहराइयों का अनुमान किया गया है। जैसे-जैसे यह धारा आगे प्रवाहित होती है वैसे-वैसे विभिन्न विचार-संरिताओं का ज्ञान-जल इसे और अधिक समृद्ध करता है। वैदिक वाङ्मय की यह धारा ऋग्वेद से लेकर उपनिषद् काल तक निरन्तर प्रवाहित होकर वेदाङ्गों से मोड़ लेती हुई पुराणों की गहराइयों में विलीन हो जाती है। अतएव ऋग्वेद से लेकर पुराणकाल तक मरुतों तथा अन्य देवों के स्वरूप व सम्बन्ध का अनुसंधान करना बहुत ही श्रमसाध्य है। परन्तु गुरूदेव की अर्हनिश कृपा और चरैवेति-चरैवेति के पुरातन सिद्धान्त ने मुझे प्रयास करने की प्रेरणा दी है।

अन्त में, मै समस्त ज्ञाताज्ञात शुभचिन्तकों के प्रति श्रद्धावनत होता हुआ प्रकृत शोध-प्रबन्ध सुधी जनों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि विद्वद्गण टंकण तथा अपरिहार्य त्रुटियों को क्षमा करते हुए, 'गच्छतस्स्खलनं क्वापि... की प्रसिद्ध सूक्ति के अनुसार प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की समीक्षा करेंगे।

**पौष, विक्रम संवत् 2059**

**दिनांक:** 20 दिसम्बर 2002

विनयावनत

राम कुमार राय

**(राम कुमार राय)**

# विषयानुक्रमणिका

# विषयानुक्रमणिका

# प्रथम अध्याय

# वैदिक वाङ्मय का परिचय

संहिता साहित्य

ऋग्वेद

यजुर्वेद

सामवेद

अथर्ववेद

ब्राह्मण साहित्य

आरण्यक साहित्य

उपनिषद् साहित्य

वेदांग साहित्य

**वैदिक वाङ्मय का परिचयः-** वेद भारतीय वाड्मय की अमूल्य निधि है । समग्र विश्व में उपलब्ध लिखित साहित्यों में वेद प्राचीनतम साहित्य है। अस्तु न केवल भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अपितु विश्व संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। श्रुति की इसी दृढ़ आधारशिला पर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है। अपने प्रातिभ चक्षु के माध्यम से साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्वों की विशाल विमल राशि का ही नाम वेद है। लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार हेतु जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य के परिज्ञान के लिए वेद उपादेय है। इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ठ परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रन्थ वेद ही है। वेद का वेदत्व इसी में है कि वह प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा (दुर्बोध तथा अज्ञेय) उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है। वेद की प्रामाणिकता में विश्वास रखने वाले आस्तिक तथा वेद प्रामाण्य में विश्वास न रखने वाले नास्तिक कहे जाते है। शतपथ ब्राह्मण का स्पष्ट कथन है कि धन से परिपूर्ण पृथ्वी के दान करने से जितना फल होता है वेद अध्ययन से उसे भी बढ़कर फल प्राप्ति होती है-

"यावन्तं ह वै इमाँ पृथ्वी वित्तेन पूर्णा ददत् लोकं जयति त्रिभिष्तावन्तं जयति, भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते, तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।"[1]

वेदज्ञ की प्रशंसा में महर्षि मनु ने कहा है कि वेदशास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति जिस किसी आश्रम में निवास करता हुआ कार्य का सम्पादन करता है वह इसी लोक में रहते हुए भी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है-

"वेदशास्त्रार्थ तत्वक्षो यत्र कुत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोकेतिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।[2]

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी वेदाध्ययन के महत्ता को प्रतिपादन किया है ।

"ब्राह्मणेन निष्कारणों धर्मो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।"[3]

वेद न केवल आध्यात्मिक, धार्मिक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है प्रत्युतः संपूर्ण वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से तात्कालिक भौगोलिक परिदृश्य भी झलक उठता है। वेद मन्त्रों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों व सूत्रग्रन्थों में मरुद्गण के साथ अन्य देवताओं का

---

1 शतः0 ब्रा0 11.5 6.1 ।
2. मनु0 12 102 ।
3 महाभाष्य0

उल्लेख मिलता है। जिनको समन्वित करके वैदिक देवशास्त्र की रुपरेखा तैयार की जा सकती है। इस प्रकार वेदों के चिर-परिचित धार्मिक व सांस्कृतिक महत्त्व के साथ-साथ कहा जा सकता है कि देवशास्त्रीय दृष्टि से भी वेदों का महत्त्व अधिक है।

वैदिक वाड्मय अत्यन्त विशाल है। संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक, उपनिषद वेद के चार भाग है। वस्तुतः इन्हीं की संज्ञा वेद है। जैसा कि आपस्तम्ब ने ''यज्ञ परिभाषा'' में वेद का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

''मन्त्रब्राह्मयोर्वेदनासधेयम्''।।[1]

वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद । इनकी संहिताए हैं। वस्तुतः मन्त्रों के समूह का नाम संहिता है। याज्ञिक अनुष्ठानों को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न ऋत्विजों के उपयोग के लिए इन मन्त्र संहिताओं का संकलन किया गया है। इस संकलन का श्रेय महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास को प्राप्त है।

## संहिता-साहित्य

**ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद**- इन चारों वेदों की पृथक-पृथक अनेक संहिताएं है। संहिताओं के साथ-साथ प्रत्येक वेद की

---

1 आप० परि० 31

अनेक शाखायें हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने ऋग्वेद की 21 शाखाओं का, यजुर्वेद के 101 शाखाओं का, सामवेद की 1000 शाखाओं का तथा अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया है।

## ऋक् संहिता

यद्यपि महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की 21 शाखाए है तथा सभी शाखाओं की अलग-अलग संहिता होनी चाहिए किन्तु सम्प्रति ऋग्वेद की केवल निम्न शाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है-

1. **शाकल शाखाः-** सम्प्रति ऋग्वेद की प्रचलित संहिता शाकल शाखा की संहिता है। इस संहिता में 1017 सूक्त हैं। यह धार्मिक स्त्रोंतो की एक अत्यन्त विशाल राशि है। जिसमें नाना देवताओं की भिन्न-भिन्न ऋषियों ने बड़े सुन्दर तथा भावाभिव्यंजक शब्दों में स्तुतियाँ एवं अपने अभीष्ट के सिद्ध के निमित्त प्रार्थनाएं की है। इसके दो प्रकार के विभाग उपलब्ध होते हैः-

1. **अष्टक क्रम-** समग्र ग्रन्थ आठ अष्टकों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अष्ट में आठ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभागों का नाम वर्ग है। इस प्रकार समग्र ऋग्वेद

आठ अष्टक, चौसठ अध्याय तथा दो हजार छः वर्गों में विभक्त है।

2. **मण्डल क्रमः-** ऋग्वेद का यह विभाजन अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक माना जाता है। संपूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल में अनेक अनुवाक्, अनुवाक् के भीतर सूक्त और सूक्तों के अन्तर्गत मंत्र या ऋचाएं है। ऋग्वेद के दस मण्डलों में 85 अनुवाक् 1028 सूक्त तथा 10580 ऋचाएं है:-

''ऋचां दशासहस्राणि ऋचां पन्वपातानि च ।
ऋचांम्शीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीतितम् ।।''[1]

ऋचाओं के शब्दों की संख्या 153826 है-

''शाकल्यदृष्टे पद लक्ष्मेंकं सार्ध व वेदे त्रिसहस्रयुक्तं ।
शतानि चाष्टौ दशकद्वयं व पदानि षट् चेति हि चर्चितानि।।''[2]

शतपथ ब्राह्मण तथा अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेदीयशब्दों के अक्षरों की संख्या 432000 है-

''स ऋचो व्यौहत् । द्वादश वृहतीसहस्राणि ।
एतावत्यो ह्यर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ।।''[3]

---

1 अनुवाका0 43
2 अनुवाका0 43
3 अनुवाका0 21

2. **वष्कल शाखा:-** इस शाखा की सहिता वेद विद्वान रॉथ को कश्मीर के राजा हरिसिंह से जीर्णशीर्ण अवस्था में प्राप्त हुई थी। जिसका प्रकाशन बाद में जर्मनी से हुआ है। इस संहिता में 1025 सूक्त है । अनुवाकानुक्रमणी[1] से ज्ञात होता है कि प्रथम मण्डल के मन्त्रों में शाकल्य क्रम से वाष्कल क्रम कुछ भिन्न है।

3. **आश्वलायन शाखा-** आश्वलायन शाखा की संहिता तथा इसके ब्राह्मण, आरण्यक आदि ग्रन्थ सम्प्रति प्राप्त नहीं है। इस शाखा के सूत्रग्रन्थ यथा आश्वलायन गृहसूत्र तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र ही उपलब्ध है।

4. **शांखायन शाखा-** इस शाखा की संहिता तो उपलब्ध नहीं है किन्तु इसके ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्, शांखायन अथवा कौषीतकी के नाम से उपलब्ध होते है।

5. **माण्डूकायन शाखा-** नामोल्लेख के अतिरिक्त इस शाखा का कोई भी ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

## ऋग्वेदीय विषय विवेचन

ऋग्वेद धार्मिक स्त्रोंतो की एक अत्यन्त विशाल राशि है। जिसमें होता नामक पुरोहित के लिए नाना देवताओं की बड़े ही सुन्दर तथा

---

1 अनुवाका0 21 ।

भावाभिव्यंजक शब्दों में स्तुतियों तथा अभीष्ट सिद्धि के निमित्त प्रार्थनाओं का संकलन किया गया है। वस्तुतः प्रत्येक ऋग्वेदीय ऋचा का एक द्रष्टा ऋषि अभीष्ट देवता एवं अपना छन्द होता है। ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से लेकर सप्तम मण्डल तक एक ही विशिष्ट कुल के ऋषियों की प्रार्थनाए संग्रहित हैं। अष्टम मण्डल में अधिकाश मन्त्र कण्व ऋषि से सम्बद्ध है। तथा नवम् मण्डल में सोम के विषय में भिन्न-भिन्न ऋषि कुलों के द्वारा द्रष्ट मन्त्रों का संग्रह है। ऋग्वेदीय देवताओं में अग्नि, इन्द्र, मरुद्गण और वरुण अपने वैशिष्ट्य के कारण नितान्त प्रसिद्ध हैं। देवियों में ऊषा का नाम अग्रगण्य है। सविता, पूषा, मित्र, विष्णु, रुद्र, पर्जन्य, प्रजापति आदि अन्य ऋग्वेदीय प्रधान देवता है।

दैवत् विवेचन के अतिरिक्त ऋग्वेद के सभी मण्डलों में बड़े-बड़े दार्शनिक विषयों, लौकिक तत्वों, सम्वाद् सूक्तों, नदियों तथा पर्वतों का भी विवेचन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दशम् मण्डल का पुरुष सूक्त अपनी दार्शनिकता गंम्भीरता तथा अन्तर्दृष्टि के लिए नितान्त एवं अन्यतम है।

## यजुर्वेद

यज्ञीय कर्म के लिए उपादेय यजुर्वेद में यजुषों का संग्रह है। यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय है। (1) ब्रह्म सम्प्रदाय (2) आदित्य सम्प्रदाय आदित्य सम्प्रदाय का यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद तथा ब्रह्मसम्प्रदाय का यजुर्वेद

कृष्ण यजुर्वेद के नाम से विख्यात् है। शुक्ल-यजुर्वेद के द्रष्टा ऋषि याज्ञवल्क्य तथा कृष्ण यजुर्वेद के द्रष्टा ऋषि वैसम्पायन हैं। शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य आख्यान द्वारा शुक्ल यजुर्वेद का उल्लेख आदित्य सम्प्रदाय के प्रतिनिधि वेद के रूप में हुआ है-

आदित्यानामानि शुक्लानि मंजूषि वाजस्नयेन याज्ञवल्क्येनख्यायन्ते।[1]

**शुक्ल यजुर्वेद**- शुक्ल यजुर्वेद में दर्शपौर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक मंत्रों का संकलन है। इस वेद की मन्त्रसंहिता वाजसनेयी संहिता के नाम से विख्यात है। इसमें चालीस अध्याय है। जिसमें आरम्भ के दो अध्यायों में दर्श तथा पौर्णमास, तृतीय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य, चतुर्थ से अष्टम् तक सोमयाग, नवम् में वाजपेय तथा दशम् में राजसूय यज्ञ से सम्बद्ध मंत्रों का वर्णन है। ग्यारह से अठारह अध्याय तक यज्ञीय होमाग्नि के लिए वेदी निर्माण का वर्णन, शत् रुद्रीय होम का वर्णन तथा उन्तीस से इक्कीस अध्यायों में सौत्रामणी यज्ञ का विधान वर्णित है। अध्याय 22 से 25 तक अश्वमेधयाग, 26 से 29 तक खिल मंत्रों का तथा 30सवे अध्याय में पुरुषमेध का वर्णन है। इक्तीसवे अध्याय में प्रसिद्ध पुरुष सूक्त है। जिसमें ऋग्वेद के अपेक्षा अन्त में 8 मंत्र अधिक उपलब्ध होते है। 32 तथा 33 अध्याय में सर्वमेध के मंत्र उल्लिखित है। 34सवां अध्याय प्रसिद्ध शिवसंकल्पोपनिषद् है। 35वें अध्याय में पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन तथा 36 से 39 अध्याय तक प्रवाथ याग का विशद् वर्णन है। अन्तिम

---

1 शत० ब्रा० 14/9/5/33 ।

40सवां अध्याय ईशावास्योपनिषद् है। जिसका अन्तिम मंत्र इस संहिता का आदित्य के साथ घनिष्ठता का परिचय देता है-

"हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापहितं मुखम् ।

योऽसावदित्य पुरुषः सोऽसावहम् ।।[1]

**काण्व संहिता-** शुक्ल यजुर्वेद की दूसरी उपलब्ध शाखा काण्व शाखा है, जिसका प्रचार वर्तमान में महाराष्ट्र प्रान्त में है। किन्तु प्राचीन काल में काण्व शाखा का प्रदेश उत्तर भारत ही था इसका समर्थन इसी संहिता के एक मंत्र से होता है-

"सः एषः वः कुरवो राजा, एष पंचालो राजा।"[2]

महाभारत के अनुसार शकुन्तला का पालन पोषण करने वाले ऋषि कण्व का आश्रम मालिनी नदी के तट पर था।[3] जो आज भी उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में मालन के नाम से प्रसिद्ध एक छोटी से नदी है। इस संहिता में 40 अध्याय 328 अनुवाक् तथा 2086 मन्त्र हैं।

## कृष्ण यजुर्वेद

कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद में वर्णित विधियां प्रायः एक समान है। शुक्ल यजु में जहां केवल मंत्रों का ही निर्देश किया गया है

---

1 ईशावा0 40/17

2. काण्व संहिता 11/11

3 महा0 आदि0 64/18

वही कृष्ण यजु में मत्रों के साथ तत् विधायक ब्राह्मण भी सम्मिलित हैं। सम्प्रति कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएं तथा उनसे सम्बद्ध साहित्य उपलब्ध होता है।

## तैत्तिरीय संहिता

तैत्तिरीय संहिता का प्रसार दक्षिण भारत में हैं। संप्रति इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूक्त ग्रन्थ सभी उपलब्ध है। यह संहिता काण्ड, प्रपाठक तथा अनुवाकों में विभक्त हैं । इसमें सात काण्ड, 44 प्रपाठक तथा 631 अनुवाक है। इसमें भी यजमान, वाजपेय, राजसूय आदि नाना यागानुष्ठानों का विशद् वर्णन हैं। विभिन्न देवों के स्वरुपगत विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

## मैत्रायणी संहिता

यह संहिता चार काण्डों में विभक्त हैं जिसका आदिकाण्ड 11 प्रपाठकों में विभक्त है। जिनमें क्रमशः दर्शपूर्णमास, आधान, पुनराधान, चातुर्मास्य तथा वाजपेय का वर्णन है। मध्यम काण्ड के 13 प्रपाठकों में काम्य दृष्टि राजसूय तथा अग्निचिति का विस्तृत विवरण है। तृतीय काण्ड या उपरिकाण्ड 16 प्रपाठकों में अग्निचिति, विधि सौत्रामणी के अनन्तर अश्वमेध का विस्तृत वर्णन किया गया है। चतुर्थ या खिल काण्ड के 14 प्रपाठकों में राजसूय आदि यागों के विषय में अन्य आवश्यक सामग्री संकलित की गयी है। इस प्रकार सम्पूर्ण संहिता में 20144 मंत्र है। इसमें यथास्थान मरुद्गण के विषय में भी वर्णन है।

## कठ-संहिता

यजुर्वेद की 27 मुख्य शाखाओं में कठ शाखा अन्यतम है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार कठ सहिता का प्रचार तथा पठन-पाठन प्रत्येक ग्राम में था-

"ग्रामे-ग्रामे काठक कालापक च प्रोच्यते" ।[1]

कठ संहिता में 5 खण्ड है जो क्रमशः इनिमिका, मध्यमिका, ओरिमिका, याज्यानुवाक्या तथा अश्वमेधायनुवचन के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन खण्डों के टुकड़ों का नाम "स्थानक" है, जो वैदिक साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता । इस संहिता में 40 स्थानक, 13 अनुक्वन, 843 अनुवाक 3091 मंत्र तथा 1800 ब्राह्मण वाक्य हैं। कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं की सामान्य प्रकृति के अनुसार इस संहिता में मंत्र वाह्य तथा ब्राह्मण का एकत्र मिश्रण हैं।

## कपिष्ठल कठ संहिता

कपिष्ठल एक ऋषि विशेष का नाम है। जिसका उल्लेख पाणिनी ने "अष्टाध्यायी"[2] में किया है। निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने भी स्वयं को "कापिष्ठलो वाशिष्ठः"[3] कहा है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार यह किसी स्थान विशेष का नाम रहा होगा। इस शाखा की संहिता अधूरी

---

1 महा0 4/3/101

2 अष्टा0 कपिष्ठलोगोत्रे 8/3/91

3 निरुक्त टीका 4/4

ही उपलब्ध होती है। जो वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में प्राप्त हैं। इसका मूल ग्रन्थ काठक संहिता के समान होने पर भी उसकी स्वयं की पद्धति ऋग्वेद से मिलती है। तथा ऋग्वेद के समान ही यह अष्टक तथा अध्यायों में विभक्त है। संहिता का उपलब्ध भाग अष्ठकों में विभक्त है।

## सामवेद

वैदिक संहिताओं में सामवेद का महत्व नितान्त गौरवमय है। ऋग्वेद[1] तथा अथर्ववेद[2] में भी सामवेद की प्रशंसा की गयी है। सामवेद के दो प्रधान भाग होते हैं- आर्चिक तथा गान । आर्चिक का शाब्दिक अर्थ है- ऋक् समूह, जिसके दो भाग है- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक । प्रत्येक पूर्वार्चिक में ''प्रपाठक या अध्याय'' है। प्रत्येक प्रपाठक में दो अर्ध या खण्ड है और प्रत्येक खण्ड में एकदशति और प्रत्येक दशति में ऋचाए हैं। दशतियों में मंत्रों का संकलन छन्द तथा देवता की एकता पर निर्भर है। इसके प्रथम प्रपाठक को आग्नेय पर्व, द्वितीय से चतुर्थ को ऐन्द्र पर्व, पन्चम को पवमान पर्व तथा षष्ठ प्रपाठक को आख्यान प्रपाठक की संज्ञा दी गयी है। इन प्रपाठकों के अन्त में परिषिष्ठ रूप में दस ''महानाम्नी'' ऋचाएं दी गयी है। इस प्रकार पूर्वार्चिक के मंत्रों की संख्या 650 है।

---

1 द्रष्टव्य वैदिक साहित्य और सस्कृति 149 ।

2 द्रष्टव्य ऋक्0-V 44/14, II 43/2, I 107/2 आदि ।

उत्तरार्चिक में 9 प्रपाठक हैं। पहले 5 प्रपाठकों में दो भाग हैं जो ''प्रपाठकार्द्ध'' कहे जाते है, तथा अन्तिम 4 प्रपाठकों में 3-3 अर्द्ध ही उत्तरार्चिक के समग्र मंत्रों की संख्या 1225 है ।[1] इस प्रकार दोनों आर्चिको की सम्मिलित मंत्र संख्या 1875 है। आचार्य बलदेव उपाध्याय[2] के अनुसार सामवेद में ऋग्वेद की 1504 ऋचाएं तथा 99 नवीन ऋचाएं है। शेष मंत्र पुनरुल्लिखित है।

## सामवेद की शाखाएं

सम्प्रति सामवेद की तीन शाखाएं ही उपलब्ध होती हैं।

## कौथुम शाखा

इस संहिता की शाखा सर्वाधिक लोकप्रिय है। शंकराचार्य[3] ने वेदान्त भाष्य के अनेक स्थलों पर इसकी उपशाखा का नाम निर्देश किया है। 25 काण्डात्मक ताण्ड्य ब्राह्मण तथा छान्दोग्योपनिषद इसी शाखा से सम्बद्ध है।

## राणायनीय शाखा

इसकी संहिता कौथुमों से कथमपि भिन्न नहीं है। केवल उच्चारण में कुछ पार्थक्य दृष्टिगत होता है।

---

1 अ0वे0 10/7/20, 11/7/24, 7/54/1 आदि ।

2 वे0सा0स0 पृष्ठ 153 ।

3 द्र0शा0भा0 3/3/27

## जैमिनीय शाखा

इसके मंत्रों की 1687 संख्या है, जो कौथुम शाखा से 182 कम है। दोनों में पाठ भेद भी नाना प्रकार के हैं। इसके उत्तरार्चिक में ऐसे अनेक नवीन तथ्य है जो कौथुमीय संहिता में उपलब्ध नहीं होता[1]। तवल्कार इसकी अवान्तर शाखा है।

## अथर्ववेद

वेदों में अन्यतम अथर्ववेद एक भूयसी विशिष्टिता से सम्बलित है। अथर्ववेद इनके साथ-साथ ऐतिहासिक भी है। यज्ञ के पूर्ण निष्पादन की निमित्त जिन 4 ऋत्विजों होता, उद्गाता, अर्ध्वयू और ब्रह्म का साक्षात् सम्बन्ध इसी वेद से है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार तीनो वेदों के द्वारा यज्ञ केवल एक संस्कार होता है, जबकि ब्रह्म के मन द्वारा यज्ञ के दूसरे पक्ष का संस्कार होता है।

> ''स वा एष त्रिभिवेर्दियज्ञस्यान्यन्तरः पक्षः सस्क्रियते मनसैव ब्रह्म स्यान्यन्तरं पक्षं संस्करोति'' ।

अथर्ववेद को ब्रह्मवेद, अथर्वाकंरवेद आदि अन्य नाम भी है। वर्तमान में अथर्ववेद की केवल दो शाखाओं का साहित्य प्राप्त होता है।

## पैप्पलाद संहिता

इस संहिता का नाम पिप्पलाद् ऋषि के नाम से है। पिप्पलाद् शाखा संहिता में 20 काण्ड है।

---

1 द्रष्टव्य श्रीपाद सातवलेकर सम्पादित सामवेद का परिशिष्ट भाग

## शौनक शाखा

वर्तमान में प्रचलित अथर्ववेदीय संहिता शौनक संहिता ही है। इसमें 20 काण्ड 731 सूक्त 5987 मंत्रों का संग्रह है। अथर्ववेद में भैषज्य, आयुष्य, पौष्टिक, प्रायश्चित्य, स्त्रीकर्माणि, राज्यकर्माणि, भूमिसूक्तादि विषयों का प्रमुखता से विवेचन किया गया है। अथर्ववेद का पन्चमांश अर्थात् लगभग 1200 मंत्र ऋग्वेद से लिए गये है। वस्तुतः अथर्ववेद भारतीय लोक जीवन की झांकी प्रस्तुत करता हुआ ऐहिक कर्मो की सिद्धि का प्रतिपादन करता है।

## ब्राह्मण साहित्य

ब्राह्मण शब्द नपुसंक लिंग में विशेषतः व्यवहृत होता है। कोश के अनुसार वेद भाग का सूचक ''ब्राह्मण'' शब्द नपुंसक ही होता है- ''ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्''। ग्रन्थ अर्थ में ''ब्राह्मण'' शब्द का प्रयोग पाणिनीय अष्टाध्यायी[1], निरुक्तं[2], शतपथ[3] व ऐतरेय[4] के साथ-साथ तैत्तिरीय संहिता में भी प्राप्त होता है। जो कि सबसे प्राचीनतम उल्लेख माना जाता है। ''एतद् वाह्मान्मेव मंत्र हवीषिं ।''[5]

तैतिरीय संहिता के भाष्य में भाष्यकार भट्टभास्कर ने ब्राह्मणों को ब्रह्मन के व्याख्यापरक ग्रन्थ के रुप में बताया है। ब्रह्मशब्द अनेकार्थी होता है। जिसका एक अर्थ है वेद में निर्दिष्ट मंत्र ''ब्रह्म वै मंत्रः'' वाक्य

---

1 द्र0 अष्टा0 3/4/36

2. द्र0 निरूक्त 4/27

3 शत0ब्रा0 4/6/9/20

4. ऐत0 ब्रा0 6/25, 8/2

5 तैत्ति0 स0 3/7/1/1 ।

ब्राह्मण ग्रन्थों[1] में अनेकशः प्रयुक्त है। इस प्रकार वैदिक मंत्रों के व्याख्यान उपस्थित करने के कारण ब्राह्मण का यह नामकरण है। ब्रह्म शब्द का दूसरा अर्थ यज्ञ होता है। विस्तार किये जाने के कारण यज्ञ ब्रह्म तथा वितान शब्द के द्वारा अभिहित किया जाता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार यज्ञ के कर्मकाण्ड की व्याख्या तथा विवरण प्रस्तुत करना ब्राह्मणों का मुख्य विषय है। इस प्रकार ब्राह्मणों में मंत्रों, कर्मो तथा विनियोगों की व्याख्या है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ब्राहमण ग्रन्थ यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करने वाला एक महनीय विश्वकोष है। जैसा कि भट्टभास्कर और वाचस्पति मिश्र की उक्तियों से भी स्पष्ट होता है-

> "ब्राह्मणं नाम कर्मण:तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः ।"
> "नैरुक्त्यं विधिचैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।"[2]

वस्तुतः ब्राह्मण याज्ञिक प्रक्रिया के पूर्ण परिचालक ग्रन्थ है, आश्वलायन[3] के अनुसार मन्त्रों के द्रष्टा को ऋषि तथा ब्राह्मणों के द्रष्टा को आचार्य कहा जाता है। उन्होंने कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भरद्वाज, सुयज्ञ, शांखायन, ऐतरेय, वाष्कल, शाकल, गार्ग्य, सुजातवक्र, औदवाहि, शौनक आदि आचार्यो का उल्लेख किया है। जिनमें ऐतरेय और कौशीतक

---

1. श० ब्रा० 7/11/5 ।
2. भट्भास्कर तैति० स० 1/5/1 भाष्य ।
3 द्र० आश्व० गृ० सू० 3/3

विशेष रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों के द्रष्टा आचार्य के रूप में आज भी प्रसिद्ध है। सम्भव है कि अन्य ऋषियों के भी ब्राह्मणग्रन्थ कभी उपलब्ध रहे हो।

संहिताए वैदिक मंत्रों का संकलन हैं, इनके अधिकांश भाग छन्दोबद्ध हैं। कुछ ही अंश गद्यात्मक है। जबकि ब्राह्मण ग्रन्थ किसी न किसी संहिता से सम्बद्ध होते है। और उसके मंत्रों का याज्ञिक विनियोग व व्याख्यान गद्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्राह्मणग्रन्थों का प्रधान विषय विधि है। और जितने भी अन्य विषय उपलब्ध होते हैं, वे सब अवान्तर होने से उसी के पोषक तथा निर्वाहक मात्र है। ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य अन्य विषयों में अर्थवाद हेतु या कारण, प्राचीन इतिहास तथा आख्यान देवता निर्वचन व स्तुति आदि की गणना की जाती है। इस समग्र विषयों का निर्देश इस प्रकार किया गया है-

> "हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
> परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना ।।
> उपमान दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु ।"[1]

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों में यज्ञ की विवेचना एक वैज्ञानिक संस्था के रूप में की गयी है तथा ब्राह्मण यज्ञ के नानारूपों तथा विविध अनुष्ठानों के इतिहास का पूर्ण परिचय प्रस्तुत करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त निर्वचन निरुक्त के मूलाधार हैं साथ ही ब्राह्मणों में उद्धृत आख्यान आवान्तर कालिक साहित्य, विशेषतः पौराणिक वाङ्मय के लिए उपयोगी हुए है।

---

1 सा० भाष्य 2/1/8

ब्राह्मण साहित्य अत्यन्त विशाल था, परम्परया वेदों की जितनी शाखाएं है उतने ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् व सूत्रग्रन्थ होने चाहिए किन्तु अनेक ग्रन्थ कराल काल के द्वारा ग्रसित किये जा चुके है। कुछ ग्रन्थों का अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होता है तथा अनेक ऐसे ग्रन्थ जिनकी रचना की सम्भावना की जा सकती है, का उल्लेख भी नहीं मिलता। इस प्रकार ब्राह्मण साहित्य का अध्ययन उपलब्ध ब्राह्मण साहित्य तथा अनुपलब्ध इन दो उपशीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है।

## ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ

ऋग्वेद से सम्बद्ध दो ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते है- (1) ऐतरेय ब्राह्मण, (2) शांखायन ब्राह्मण ।

## ऐतरेय ब्राह्मण

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण है। इसके रचयिता आचार्य महिदास ऐतरेय माने जाते है। आचार्य सायण के अनुसार ये किसी सूद्र के पुत्र थे।[1] ऐतरेय ब्राह्मण में चालीस अध्याय है। इसके प्रत्येक पांच अध्यायों को मिलाकर एक पन्चिका तथा प्रत्येक अध्याय

---

1. द्र0 ऐतरेय ब्राह0 सायण भाष्य भूमिका भाग ।

में अनेक कण्डिकाएं हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऐतरेय ब्राह्मण में आठ पंचिकाए 40 अध्याय तथा 285 कण्डिकाएं हैं। ऋग्वेद से सम्बद्ध यह ब्राह्मण यज्ञ से होतृ नामक ऋत्विज् के विशिष्ट कार्य कलापों का विशेष विवरण प्रस्तुत करता है। इसकी प्रथम तथा द्वितीय पन्चिका में अग्निष्टोम याग में होतृ के विविध विधानों तथा कर्तव्यों का विशिष्ट वर्णन है, तृतीय तथा चतुर्थ पन्चिका में प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा साय सवन के समय प्रयुज्यमान शास्त्रों एवं अग्निष्टोम की विकृतियों - उक्थ्य, अतिशत्र तथा षोडशी नामक यागों का वर्णन मिलता है। पंचम पन्चिका में द्वादशाह यागों तथा षष्ठ पन्चिका में सोम यागो, सप्तम पन्चिका में राजसूय यागों का वर्णन मिलता है। अष्टम पन्चिका में ऐन्द्र महाभिषेक तथा उसी आधार पर चक्रवर्ती नरेशों के महाभिषेक का बड़ा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सप्तम पन्चिका में वर्णित सुनःसेप का प्रख्यात आख्यान न केवल ब्राह्मण सांहिता की, अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

ऐतरेय ब्राह्मण का मरुद्गण के साथ देवताओं के महत्व के साथ ही इसका भौगोलिक महत्व भी है। इस ब्राह्मण में अनेक नदियों, पर्वतों आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। साथ ही यह ब्राह्मण ग्रन्थ भौगोलिक दृष्टि से मध्य देश से सम्बद्ध प्रतीत होता है। क्योंकि मध्य देश का उल्लेख बड़े अभिमान के साथ किया गया है ।''[1]

1 ऐत० ब्रा० 6/14

इस ब्राह्मण में वर्णित सुन:सेप का आख्यान आर्यो के दक्षिण देशों में प्रसार के इतिहास तथा समय का पूर्ण साक्षी है। पौड्र, आन्ध्र, पुलिन्द, शवर, तथा भूतिव आर्यों के सीमान्त प्रदेश में निवास करने वाली अनार्य जातियाँ हैं। जिनके साथ आर्यो का इस युग में संपर्क यह ब्राह्मण ग्रन्थ स्पष्ट करता है।

## शांखायन ब्राह्मण

ऋग्वेद से सम्बद्ध यह ब्राह्मण ग्रन्थ 30 अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में 5 से लेकर 17 तक खण्ड हैं। इस प्रकार संपूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ में खण्डों की संख्या 226 है। अधिकांश विद्वान शांखायन और कौषीतकी को एक ही मानते हैं ।

विषय विवेचन की दृष्टि से यह ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण का ही अनुगामी है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ में रुद्र की महिमा का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है। वह देवों में श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ माना गया है- ''रुद्रों वै ज्येष्ठाश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्।''[1] इसी प्रकार छठे अध्याय में उशिनि नाम तथा अन्य नामों की उत्पत्ति विचित्र ढंग से बतलाई गयी है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय तक देवताओं की पैराणिक त्रिमूर्ति ब्राह्म, विष्णु, महेश की श्रेष्ठता की भावना जाग उठी थी और लोगों में

---

1 शा0 ब्रा0 25/13 ।

याज्ञिक हिंसा के प्रति घृणा की भावना जाग रही थी । वरुणों के साथ-साथ प्रत्येक वर्ण में गोत्र का प्रभाव प्रबल होने लगा था।[1] "ब्राह्मणों समान गोत्रे वसेत्, यत् समाने गोत्रेऽनाद्य तस्योपात्यै।"

## यजुर्वेदीय ब्राह्मण

यजुर्वेद से सम्बद्ध दो ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। जिनमें प्रथम शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेद तथा द्वितीय तैत्तिरीय ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है।

## शतपथ ब्राह्मण

ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन, महत्वपूर्ण, विपुलकाय तथा यगानुष्ठान का सर्वोत्तम प्रतिपादक ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन तथा काण्व दोनों ही शाखाओं में यह ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें 100 अध्याय है, किन्तु इसका विभाजन काण्डों, अध्यायों, प्रपाठकों ब्राह्मणों, कण्डिकाओं में हुआ है। इस प्रकार माध्यन्दिन शतपथ में काण्डों की संख्या 14, अध्यायों की संख्या 100, प्रपाठकों की संख्या 68, ब्राह्मणों की 438 तथा कण्डिकाओं की संख्या 7624 है, शतपथ के काण्व शाखा में प्रपाठक, उपखण्ड का नामोनिशान नहीं है। तथा काण्डों की संख्या 17, अध्यायों की संख्या 104, ब्राह्मणों की संख्या 435 तथा कण्डिकाओं की संख्या 6806 है। शतपथ के

---

1. शा० ब्रा० 25/15 ।

माध्यन्दिन शाखा में प्रथम काण्ड से आरम्भ कर नवम काण्ड तक "पिण्डपितृयज्ञ" को छोड़कर विषयों का क्रम माध्यन्दिन संहिता के अनुसार ही है। शेष काण्डों में भी संहिता का ही क्रम अंगीकृत किया गया है। दोनों माध्यन्दिन और काण्व शतपथों के आरम्भ में ही अन्तर दृष्टिगोचर होता है। माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम काण्ड का विषय "दर्शपूर्णमासष्टि" काण्व के द्वितीय काण्ड में है। तथा द्वितीय काण्ड का विषय "आषान, अग्निहोत्र आदि काण्व के प्रथम काण्ड में ही समाविष्ट हैं, किन्तु उनका क्रम दोनों में भिन्न-भिन्न है।

माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम काण्ड में दर्शपूर्णमास इष्टियों का तथा द्वितीय काण्ड में आधान, अग्निहोत्र, पिण्डपितृ यज्ञ, आग्रायण और चातुर्मास्य का वर्णन है। सोमयाग के विभिन्न यागों के विवरण से सम्बद्ध तृतीय और चतुर्थ काण्ड है। पंचम काण्ड में वाजपेय याग तथा राजसूय याग का विवेचन है। 6 काण्ड से लेकर 10 काण्ड तक उषासम्भरण, विष्णु क्रम का संपूर्ण वर्णन[1], शत्रुद्रिय होम[2], सम्पत्ति तथा उपनिषद् रूप से अग्नि की उपासना आदि का वर्णन[3], किया गया है। प्रथम काण्ड में याज्ञवल्क्य को जो चतुर्दश काण्ड में समस्त शतपथ के कर्ता माने गये है का प्रामाण्य सर्वातिशायी है, परन्तु द्वितीय काण्ड में याज्ञवल्क्य का नाम निर्देश न होकर शाण्डिल्य ऋषि का ही प्रामाण्य निर्दिष्ट है। ये शाडिल्य 104 काण्ड में

---

1 मा0शा0ब्रा0-सप्तम एव अष्टमकाण्ड ।

2 मा0शा0ब्रा0- नवम् काण्ड ।

3 मा0शा0ब्रा0-दशम् काण्ड ।

वर्णित "अग्निरहस्रु" के प्रवक्ता बतलाये गये हैं। अन्तिम काण्ड चतुष्टय[1] में अनेक नवीन विषयों का विवेचन उपलब्ध होता है जो साधारण तथा ब्राह्मणों में विवेचित तथा संकेतित नहीं होते । ऐसे विषयों में से कतिपय महत्वपूर्ण विषय ये है उपनयन[2], स्वाध्याय, जो ब्राह्मयज्ञ के रुप में स्वीकृत किया गया है[3], और्ध्वदेहित क्रियाओं का अनुष्ठान[4], अश्वमेध, पुरुषमेध तथा मर्षमेध का विशद विवेचन 136 वें काण्ड में, तथा प्रवर्ग्य याग का वर्णन 14हवें काण्ड में किया गया है। शतपथ के अन्त में वृहदारण्यक उपनिषद् है।

उपलब्ध ब्राह्मण साहित्य में शतपथ ब्राह्मण प्राचीनतम् माना जाता है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी यह ब्राह्मण प्राचीनतम् सिद्ध होता है।

## तैत्तिरीय ब्राह्मण

तैत्तिरीय ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा का एक मात्र उपलब्ध ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण का पाठ स्वरयुक्त मिलता है। फलतः यह शतपथ ब्राह्मण की भांति नितान्त प्राचीन प्रतीत होता है। यह ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त है, जिन्हें काण्ड कहते हैं। प्रथम तथा द्वितीय काण्ड में आठ

---

1 मा0शा0ब्रा0-एकादश काण्ड से चतुर्दश काण्ड ।
2 मा0शा0ब्रा0- 11/5/41 ।
3 मा0शा0ब्रा0- 11/5/6-8 ।
4 मा0शा0ब्रा0- 13/8 ।

प्रपाठक तथा तृतीय काण्ड में 12 अध्याय हैं । ये अवान्तर खण्ड अनुवाक् के नाम से प्रसिद्ध है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में अग्न्याधान, गवाभयन, वाजपेय, सोम, नक्षत्रेष्टि तथा राजसूय यागों का वर्णन है। द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, उपहोम, सौत्रामणि यागों तथा वृहस्पतिसव, वैश्य सव प्रभृति नाना सवों का विवरण दिया गया है। पर्तयेक अनुष्ठान में उपयोगी ॠचाओं का भी सर्वत्र निर्देश है। तृतीय काण्ड, जो कि सामान्यतः अवान्तर कालिक माना जाता है, में नक्षत्रेष्टि पुरुषमेध, त्रयीविद्या, चातुर्होत्र, वयस्वसृज प्रभृति यागों का वर्णन प्राप्त होता है।

## सामवेदीय ब्राह्मण

ब्राह्मण साहित्य की दृष्टि से सामवेद अत्यन्त समृद्ध है, सामवेद के आठ-ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनका विवरण निम्नलिखित हैं-

## ताण्ड्य ब्राह्मण

सामवेद की ताण्डिय शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम ताण्ड्य ब्राह्मण तथा 25 अध्यायों में विभक्त होने से पंचविंश एवं अत्यन्त विशालकाय होने से महाब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है। यागानुष्ठानों में उद्‌गातृ, ॠत्विज के कार्यो की विपुल मीमांसा इस ब्राह्मण की महनीयता है। इसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्यायों में त्रिवृत्, पन्चदश, सप्तदश प्रभृति

सोम की स्तुतियों का विशद् वर्णन है। चतुर्थ तथा पंचम अध्यायों में एक वर्ष तक चलने वाले याग का वर्णन है। 6 से 9 अध्याय तक ज्योष्टोम उक्थ्य तथा अतिरात्रि का वर्णन है। इसी के अन्तर्गत प्रातः सवन माध्यान्दिन सवन, सायं सवन का विधान वर्णित है। दशम से पन्द्रहवें अध्याय तक द्वादशाह यागों का विधान तथा 16 से 19 अध्याय तक नाना प्रकार के एकाह यागों का विवरण है। 20 से 22 अध्याय तक अहीन यागों का वर्णन है। जो ऐसे सोमयाग से सम्बन्ध रखते हैं जिससे तीनों वर्णो का अधिकार रहता है। तथा अनेक यजमानों द्वारा निष्पन्न होता है। 23 से 25 अध्याय तक विभिन्न सत्रों का वर्णन प्राप्त होता है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में साम और सोमयाग का वर्णन ही मुख्य विषय है। सामवेद से सम्बद्ध होने के कारण साम के विशेष प्रकारों का तथा उनके नामकरण और उदय का विवेचन प्राप्त है। साम का नामकरण उनके द्रष्टा ऋषियों के कारण ही पड़ा है। यथा–युतान ऋषि के द्वारा दृष्ट साम यौतान[1], वैखानस ऋषियों द्वारा दृष्ट साम, वैखानस[2] शर्कर ऋषि दृष्टसाम ''शार्कर''[3] इस परम्परा को अधिक स्पष्ट करता हैं।

ब्राह्मणयुगीन देवता ज्ञान के लिए भी इस ब्राह्मण की प्रकृष्ट उपयोगिता है। ताण्ड्य का भौगोलिक क्षेत्र कुरुक्षेत्र तथा सारस्वत मण्डल है,

---

1 ता0 महा0 ब्रा0 17.1.6 ।

2 ता0 महा0 ब्रा0 14 4 7 ।

3 ता0 महा0 ब्रा0 14 5.14 ।

जो स्वर्ग के समान माना गया है।[1] कुरुक्षेत्र से नैमिषारण्य तक का प्रदेश यज्ञभूमि के रूप में उल्लिखित है। ''रोहितकूलीय'' साम की व्याख्या[2] में भरतों के साथ विश्वामित्र का रोहित नदी के कूल को जीतने का उल्लेख है। ''विनशन् प्लक्षप्रास्रवण'' यमुना तथा कारणचव कतिपय महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थान यहां निर्दिष्ट है।[3] इस प्रकार स्पष्ट होता है, कि यह ब्राह्मण महत्ता की दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण के समतुल्य है, जो कि ब्राह्मण साहित्य में अपनी प्राचीनता व विषय वैशद्य तथा विशालता के लिए प्रख्यात है ।

## षड्विंश ब्राह्मण

यह ब्राह्मण पाँच प्रपाठकों में विभक्त है और प्रत्येक प्रपाठक में अनेक खण्ड है। वस्तुतः यह ब्राह्मण पंन्चविंश ब्राह्मण का परिशिष्ट भाग है, षडविंश नाम भी इस बात का द्योतक है कि यह ताण्ड्य ब्राह्मण का छब्बीसवां अध्याय है। इसका विषय भी ताण्ड्य ब्राह्मण के विषयों का सार सा प्रतीत होता है। इसके पंचम प्रपाठक को अद्भुत ब्राह्मण कहा जाता है क्योंकि इसमें भूकम्प तथा अकाल में पुष्प एवं फल उत्पन्न होने, आवतरी के गर्भ के होने, हथिनी के डूबने आदि नाना प्रकार के उत्पादों के लिए शान्ति का विधान किया गया है। यह प्रपाठक उस युग की विचित्र भावनाओं को समझने के लिए नितान्त उपयोगी है।

---

1 ता0 महा0 ब्रा0 25 अध्याय ।

2 ता0 महा0 ब्रा0 14 3 13 ।

3 ता0 महा0 ब्रा0 25.10 1, 25 10.16, 25 10 26 ।

# सामविधान ब्राह्मण

यह सामवेद का अन्यतम ब्राह्मण है, जिसका विषय ब्राह्मणों में उपलब्ध विषयों से नितान्त भिन्न है। इस ब्राह्मण में नाना उपद्रवों की शान्ति के लिए सामगायन के साथ कतिपय अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का विधान पाया जाता है। इस ब्राह्मण में तीन प्रकरण हैं। जिसके प्रथम प्रकरण में कृच्छ अतिकृच्छ आदि स्मृतियों में बहुशः वर्णित व्रतों का वर्णन उपलब्ध होता है। द्वितीय प्रकरण में पातविक कर्मो[1], मणिभद्रपूजन[2], विनायक तथा स्कन्द की शान्ति, रूद्र और विष्णु की शान्ति[3], शुत्रमारण[4], राजयक्ष्मा निवारण[5], तथा सुन्दर एवं दीर्घायु पुत्र प्राप्ति के लिए नाना प्रयोग का वर्णन किया गया है। सामविधान ब्राह्मण के तृतीय परिच्छेद में एतवर्य नामक नवीन गृह में प्रवेश, राज्याभिषेक तथा आयुष्य की प्राप्ति के लिए नाना अनुष्ठानों का वर्णन भिन्न-भिन्न सामगायन के साथ किया गया है। भूत, प्रेत, गन्धर्व, अप्सरा तथा देवताओं के प्रत्यक्षीकरण के लिए सामो का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार यह ब्राह्मण ग्रन्थ एक नवीन तथा विचित्र विधि विधानों के परिचय के लिए अपना विशेष महत्व रखता है।

---

1 सामo ब्राo 2/6/14 ।

2 सामo ब्राo 3/3/3 ।

3 सामo ब्राo 1/4/6-19 ।

4 सामo ब्राo 215/4 ।

5 सामo ब्राo 24/9 ।

## आर्षेय ब्राह्मण

इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक तथा 82 खण्ड हैं, इस ब्राह्मण में साम के उद्भावक ऋषियों का नाम तथा संकेत दिया गया है। सामज्ञान के वैज्ञानिक अनुशीलन के निमित्त यह ब्राह्मण नितान्त उपादेय है।

## देवता अध्याय ब्राह्मण

यह द्वैवत ब्राह्मण सामवेदी ब्राह्मणों में अत्यन्त लघु ब्राह्मण है। यह तीन खण्डों में विभाजित है, जिसके प्रथम खण्ड में 26 कण्डिकाए द्वितीय में 11 कण्डिकाए तथा तृतीय 25 काण्डिकाए है। प्रथम खण्ड में अग्नि, इन्द्र, मरुद्गण प्रजापति, सोम, वरुण, त्वष्टा, पूषा, सरस्वती तथाा इन्द्राग्नि आदि सम देवताओं की प्रशंसा में ज्ञेय सामो के विशिष्ट नाम भी दिये गये हैं। द्वितीय खण्ड में छन्दों के देवता का वर्णन है। तृतीय में छन्दों की निरुक्तिया दी गयी है।

## उपनिषद् ब्राह्मण

यह ब्राह्मण 10 प्रपाठकों में विभक्त है। जिसमें 2 ग्रन्थ सम्मिलित हैं- छान्दोग्य ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद्। छान्दोग्य ब्राह्मण का नाम मंत्र ब्राह्मण भी है। इस ब्राह्मण में दो प्रपाठक और प्रत्येक प्रपाठक में 8-8 खण्ड हैं। यह ब्राह्मण ग्रन्थ गृह संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों का एक सुन्दर संग्रह है। इसके प्रथम प्रपाठक में विवाह,

गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, उपनयन, समावर्तन, एवं गोवृद्धि के निमित्त मत्र दिये गये हैं। द्वितीय प्रपाठक में भूतबलि, आग्रहायणीय कर्म, पितृपिण्डदान, दर्शपूर्णमास, आदि नवगृह प्रवेश, एवं प्रसाद प्राप्ति आदि के मंत्र हैं।

उपनिषद ब्राह्मण के अन्तिम 8 प्रपाठक छान्दोग्य उपनिषद् के लिए प्रसिद्ध हैं।

## संहितोपनिषद् ब्राह्मण

संहिता के उपनिषद अर्थात् रहस्य का प्रतिपादक यह ब्राह्मण सामगायन का विवरण प्रस्तुत करने वाले सामवेदीय ब्राह्मण में विशिष्ट व महत्वपूर्ण है। यह ब्राह्मण 15 खण्डों में विभाजित है। जिसके प्रत्येक खण्ड में अनेक सूत्र है। प्रथम खण्ड में त्रिविध गान का स्वरूप तथा फल का विवरण है। द्वितीय तथा तृतीय खण्ड में गान संहिता की विधि स्तोम, अनुलोम, प्रतिलोम स्वर, अन्य नाना प्रकार के स्वर आदि का विस्तृत प्रतिपादन है। चतुर्थ तथा पंचम खण्ड का विषय पूर्वोक्त प्रथम से तृतीय खण्ड के तथ्यों के विषयों का पूरक है। इस प्रकार सामगायन के रहस्य की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण व अद्वितीय है।

## वंश ब्राह्मण

यह ब्राह्मण आकार में अत्यन्तलघु है। यह तीन खण्डों में विभाजित है। इसमें सामवेदीय आचार्यो की वंशपरम्परा वर्णित है। प्राचीन ऋषियों के इतिहास के परिज्ञान हेतु यह ब्राह्मण अत्यन्त उपयोगी है।

# अथर्ववेदीय ब्राह्मण

अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध है जिसका नाम गोपथ ब्राह्मण है।

## गोपथ ब्राह्मण

**गोपथ ब्राह्मण के दो भाग है–**[1] पूर्वगोपथ व उत्तरगोपथ पूर्वगोपथ में 25 प्रपाठक है, तथा उत्तर गोपथ में 6 प्रपाठकों का विभाजन कण्डिकाओं में हुआ है। जिनकी कुल संख्य 258 है। पूर्वगोपथ के प्रथम प्रपाठक में ओंकार तथा गायत्री की विशेष महिमा वर्णित है। द्वितीय प्रपाठक ब्रह्मचारियों के नियमों का विशेष उल्लेख प्रस्तुत करता है। तृतीय प्रपाठक में यज्ञ के चारों ऋत्विजों के कार्य-कलाप का वर्णन है। चतुर्थ प्रपाठक में ऋत्विजों की दीक्षा का विशेष वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं। पंचम प्रपाठक सम्बतनर-सत्र, अश्वमेध, पुरुषमेध, अग्निष्टोम आदि अन्य सुप्रसिद्ध यज्ञों का विस्तृत विवेचन करता है। उत्तरगोपथ में नाना प्रकार के यज्ञों तथा तत्सम्बद्ध देव आख्यायिकाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार इस ब्राह्मण के रचयिता निश्चित रूप से गोपथ ऋषि है। इसमें निर्दिष्ट देशों के कुरू-पान्चाल अंग-मगध, काशी-कौशल-शाल्व-मत्स्य, का उल्लेख पाया जाता है। जिससे इस ब्राह्मण का रचयिता मध्य देश का निवासी प्रतीत होता है।[2]

---

1 द्र0 वैदिक सा0 स0 पृष्ठ 244 ।

2. गो0 ब्रा0 पूर्व90 2/10 ।

# अनुपलब्ध ब्राह्मण

ब्राह्मण साहित्य अत्यन्त विशाल है सम्प्रति अनेक ब्राह्मणों के उद्धरण विविध ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। किन्तु उनका मूल ग्रन्थ प्राप्य नहीं है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस प्रकार के चौबीस ब्राह्मणों का उल्लेख किया है-[1] 1. साट्यायन ब्राह्मण, 2. भात्र ब्राह्मण, 3. जैमिनीय या तलवल्कर ब्राह्मण, 4. आह्रक ब्राह्मण, 5. कंकति ब्राह्मण, 6. काल वब्रि ब्राह्मण, 7. चरक ब्राह्मण, 8. छागलेय ब्राह्मण, 9. जाबालि ब्राह्मण, 10. पैगायनि ब्राह्मण, 11. मासशारादि ब्राह्मण, 12. मैत्रायरणीय ब्राह्मण, 13. रौरुकि ब्राह्मण, 14. शैशालि- ब्राह्मण[2], 15, श्वेता-श्वतर- ब्राह्मण, इनके अतिरिक्त आठ ब्राह्मणों के नाम और मिलते हैं- काठक ब्राह्मण, खण्डिकेय ब्राह्मण, औखेय- ब्राह्मण, गालव- ब्राह्मण, तुम्बर ब्राह्मण, अल्णेय ब्राह्मण, सौलभ ब्राह्मण, पराशर ब्राह्मण[3] । उपलब्ध ब्राह्मणों की संख्या निम्न हैं-

**ऋग्वेद** – 1. ऐतरेय ब्राह्मण, 2. शांखायन ब्राह्मण

**शुक्ल यजुर्वेद** - 3. शतपथ ब्राह्मण ।

**कृष्ण यजुर्वेद** - 4. तैत्तिरीय ब्राह्मण ।

---

1 द्र0 वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ0 212-213 ।

2. द्र0 महाभारत 6/4/144 ।

3. द्र0 वैदिक सा0 का इति0 भाग द्वितीय पृष्ठ 26-34 ।

**सामवेद**- 5. ताण्डय, 6. षड्विंश, 7 सामविधान 8. आर्षेय 9. दैवत, 10. उपनिषद्- ब्राह्मण, 11. संहितोपनिषद्, 12. वंश ब्राह्मण, 13. जैमिनीय ब्राह्मण ।

**अथर्ववेद-गोपथ ब्राह्मण-**

## आरण्यक-साहित्य

प्राणविद्या की महिमा के विशेष प्रतिपादक यज्ञ यागों की आध्यात्मिक मीमांसा एवं दार्शनिक विचारों के विवेचन प्रस्तुत करने वाले आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मणों के परिशिष्ट के समान हैं। आचार्य सायण की सम्मति में अरण्य में पठित होने के कारण इनका नामकरण आरण्यक हुआ है। इन ग्रन्थों में मरुद्गण का आंशिक विवेचन प्राप्त है तथा अन्य देवताओं से सम्बन्ध का वर्णन भी किया गया है।

आरण्यक वेद के तृतीय भाग के रूप में विख्यात हैं। सामान्यतः आरण्यकों में उन महनीय आध्यात्मिक तत्वों का संकेत उपलब्ध होता है जिनका पूर्ण विकास उपनिषदों में प्राप्त होता है। उपनिषद् आरण्यकों के ही अन्त में आने वाले परिशिष्ट हैं तथा प्राचीन उपनिषद् आरण्यकों के ही अंश तथा अंग रूप में आज भी उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार वैदिक तत्व मीमासा के इतिहास में आरण्यक विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख उपलब्ध आरण्यक निम्नलिखित है-

## ऐतरेय आरण्यकः

ऐतरेय आरण्यक ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है ऋग्वेद के दो आरण्यकों में अन्तिम आरण्यक ऐतरेय आरण्यक है। इसमें वस्तुतः 5 आरण्यक है। ऋक्श्रवणी को ऋक्वेदी लोग वेद पारायण के अवसर पर उपयोग करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण को तो उसके आद्यवाक्य के द्वारा ही निर्देश समाप्तकर देते हैं, किन्तु ऐतरेय आरण्यक के अन्तर्गत पाँचों आरण्यकों के आद्य पदों का पाठ पृथक् रूप से करते हैं जो इनके पृथक् ग्रन्थ मानने का प्रयास का प्रमाण माना जा सकता है। ऋग्वेद के मंत्रों का बहुशः उद्धरण ''अदुक्तृमृषिणा'' निर्देश के साथ किया गया है।

प्रथम आरण्यक में महाव्रत का वर्णन है, जो ऐतरेय-ब्राह्मण के ''गवामयन'' का ही एक अंश है। द्वितीय प्रपाठक के प्रथम तीन अध्यायों में उक्थ तथा निष्कैवल्य शस्त्र तथा प्राण विद्या और पुरुष का विवेचन है। चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है। तृतीय आरण्यक का दूसरा नाम संहितोपनिषद है, जिसमें संहिता पद, क्रम पाठों का वर्णन तथा स्वर, व्यंजन आदि के स्वरुप का विवेचन है। इस खण्ड में शाकल्य तथा माण्डुलेय के मतों का उल्लेख है। यास्क से प्राचीन होने के कारण यह आरण्यक निःसन्देह एक सहस्र वर्ष विक्रम पूर्व होगा। इसमें निर्भुज, प्रवृष्ण सन्धि संहिता आदि परिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। चतुर्थ आरण्यक बहुत छोटा है। जिसमें महाव्रत के पंचम दिन में प्रयुक्त होने वाली कतिपय महानाम्नी ऋचाए दी गयी है। अन्तिम आरण्यक में निष्केवल शरत का वर्णन

हैं। इन आरण्यकों में प्रथम तीन के रचयिता ऐतरेय, चतुर्थ के आश्वलायन तथा पंचम के शौनक माने जाते हैं। यह शौनक वृहद्देवता के निर्माण करने वाले हैं। यह सिद्धान्त मान्य नहीं है। डॉ0 कीथ ने इसे निरुक्त से अर्वाचीन मानकर इसका रचनाकाल षष्टंशतक वि0 पूर्व मानते हैं। परन्तु वस्तुतः यह निरुक्त से प्राचीनतर है, तथा महिदास ऐतरेय के प्रथम तीन आरण्यको के रचयिता होने के कारण यह ऐतरेय ब्राह्मण का ही समकालीन सिद्ध होता है।

इस आरण्यक का द्वितीय प्रपाठक प्राणविद्या का विशिष्ट प्रतिपादन करता है। इससे प्राणविद्या को अपनी अनोखी सूझ नहीं बतलाते है, अपितु ऋग्वेद के मंत्रों[1] को अपनी पुष्टि में उद्धृत करते है। जिससे प्राणविद्या की दीर्घ कालीन परम्परा का इतिहास मिलता है। सब इन्द्रियों में प्राणों की श्रेष्ठता सुन्दर आख्यायिका के द्वारा वर्णित की गयी है।[2]

''सोऽयमाकाशः प्रौणेम बृहत्याविष्टः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन वृहत्या विष्टवधः। एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेना बृहत्यविष्टब्धानीत्येवं विद्यात्''।[3]

इसमें यहां तक प्राण विद्या के बहाने कहा गया है कि-

''सर्वाऋचः सर्वेघोष एकैव व्याहृतिः प्राणः एवं प्राण ऋच इत्येष विद्यात्।''[4]

---

1 द्र0 ऋग्वेद I 164/31, I 164/38 ।

2 ऐत0 आ0 2/1/4 ।

3. ऐत0 आ0 2/1/5 ।

4 ऐत0 आ0 2/2/10 ।

## शांखायन आरण्यक

ऐतरेय आरण्यक के समान ही ऋग्वेद का दूसरा आरण्यक शांखायन आरण्यक है। इसके 15 अध्यायों में से तीन से लेकर छः तक कौशीतकि नाम से प्रसिद्ध उपनिषद् है। षष्ट अध्याय में उशीनर, मत्स्य, काशी, विदेह तथा कुरु-पान्चाल का निर्देश इसे मध्य देश से सम्बद्ध सिद्ध करता है। त्रयोदश अध्याय में उपनिषदों से विशेषत: वृहदारण्यक उपनिषद् से अनेक उद्धरण यहाँ मिलते हैं।

## वृहदारण्यक

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध यह आरण्यक आत्मतत्व की विशेष विवेचना के कारण यह उपनिषद् माना जाता है। यह प्राचीनतम है। कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणीय शाखा का भी एक आरण्यक है। जो मैत्रायणीय उपनिषद् कहलाता है।

## तैत्तिरीय आरण्यक

इस आरण्यक में दस परिच्छेद तथा प्रपाठक हैं। जो साधारण रीति से अरण्य कहे जाते है तथा इनका नामकरण इनके आद्यपद के अनुसार हुआ है। जैसे प्रथम नाम है भद्र 2. सहवै, 3. चित्ति, 4. युन्जते, 5. देववै, 6. परे, 7. शीक्षा, 8. ब्रह्म विद्या, 9. भृगु, 10. नारायणीय इसमें सप्तम, अष्टम तथा नवम् प्रपाठक मिलकर तैत्तिरीय आरण्यक कहलाते हैं।

दशम् प्रपाठक भी महानाराणीय उपनिषद् है, जो इस आरण्यक का परिशिष्ट माना जाता है। प्रपाठकों का विभाजन अनुवाकों में है, तथा नवम प्रपाठक तक के समस्त अनुवाक संख्या में 170 हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के समान ही यहां भी प्रत्येक अनुवाक् में दस वाक्यों की एक इकाई मानी गयी है तथा प्रत्येक दशक का अन्तिम पद वाक्यों की एक इकाई मानी गयी है। तथा प्रत्येक दशक का अन्तिम पद अनुवाक् के अन्त में परिगणित किया गया है।

तैत्तिरीय आरण्यक के आरम्भिक अनुवाकों में काल के परमार्थिक तथा व्याव्हारिक रूप का निदर्शन बड़ी सुन्दरता से किया गया है। व्यावहारिक काल अनेक तथा अनित्य है। इस प्रसंग में उसकी तुलना महानदी से की गई है जो अक्षय स्रोत से सदा प्रवाहित है। जिसको नाना सहायक नदिया आकर पुष्ट बनाती है, तथा जो विस्तीर्ण होकर कभी नहीं सूखती, काल की दशा भी यथार्थ ऐसी है । इमसें मरुद्गण के स्वरूपगत विशेषता का वर्णन हुआ है। विशेषकर विद्युत शक्ति का विशेषण देखने को मिलता है।

प्रथम प्रपाठक में अरुण केतुक नामक अग्नि की उपासना तथा तदर्थ इष्ट का वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक में स्वाध्याय तथा पंच महायज्ञों का वर्णन है और वहाँ गंगा, यमुना का मध्यदेश अत्यन्त पवित्र तथा मुनियों का निवास बतलाया गया है। तृतीय प्रपाठक चातुर्होत्रचिति के उपयोगी मंत्रों का वर्णन प्रस्तुत करता है। चतुर्थ में प्रवर्ग्य के उपयोगी मंत्रों का संग्रह है। इस

प्रपाठक में अभिचार मंत्रों की भी सत्ता है, जिनका प्रयोग शत्रु के मारण के लिए किया जाता है। इसी में भृगु और अङ्गिरा के रौद्र प्रयोगो का उल्लेख अथर्ववेद के अभिचारों की ओर स्फुट संकेत है।[1] पंचम में यंत्रीय संकेतो की उपलब्धि होती है। षष्ठ प्रपाठक में पितृभेद्य-सम्बन्धी मंत्रों का उल्लेख किया गया है तथा अनेक मंत्र ऋग्वेद से यहां उद्धृत किया गया है।[2]

दशम प्रपाठक नारायणीयोपनिषद हैं, जो खिलकाण्ड माना जाता है। इसमें देवताओं का विवेचन प्राप्त है ।

इस आरण्यक में अनेक विशिष्ट बाते स्थान-स्थान पर आती है। यथा ''कश्यप'' का अर्थ है सूर्य। इसकी व्यवस्थिति पर्याप्त वैज्ञानिक है- ''कश्यपः पश्यको भवति । यत सर्वपरिश्यति सौक्ष्मयात्''[3] अर्थात् ''पश्यक'' शब्द से वर्णविपर्यय के नियम से कश्यप शब्द निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार वर्णविपर्यय से निष्पन्न शब्द का यह सुन्दर वैदिक उदाहरण है। यहां पाराशर्य व्यास का उल्लेख मिलता है।[4] द्वितीय प्रपाठक के आरम्भ में ही सन्ध्या में प्रयुक्त सूर्य के अर्घ्यजल की महिमा वर्णित है कि उस जल के

---

1 तैत्ति० आ० 4/27, 4/37 ।

2 तैत्ति० आ० 4/38 ।

3 द्र० वैदिक साहित्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड,· पृ० 151-156 ।

4 तैत्ति० आ० 1/9/21 ।

प्रभाव से सूर्य पर आक्रमण करने वाले राक्षसों का सर्वथा संहार हो जाता है।[1]

## तवल्कार आरण्यक

यह आरण्यक सामवेद से सम्बन्धित है। इसी आरण्यक को "जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण" भी कहते हैं। इसके चार अध्याय हैं। तथा प्रत्येक अध्याय में अनुवाक् है। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक् में प्रसिद्ध तवल्कार या केन उपनिषद् है। अथर्ववेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है, इस वेद से सम्बन्ध जो अनेक उपनिषद् उपलब्ध होते है, वे किसी आरण्यक के अंग न होकर आरम्भ से ही स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में विद्यमान हैं।

## उपनिषद्-साहित्य

उपनिषद् आरण्यकों के परिशिष्ट भाग तथा वेद के चतुर्थ व अन्तिम भाग है। परम्परया प्रत्येक वैदिक शाखा का एक या एकाधिक उपनिषद् होना चाहिए किन्तु सम्प्रति-वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। वेद के अन्तिम भाग होने से तथा सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक होने से उपनिषद् वेदान्त के नाम से विख्यात हैं। उपनिषद् भारतीय तत्वज्ञान तथा धार्मिक सिद्धान्तों के मूल स्रोत हैं। वैदिक धर्म की मूल तत्व प्रतिपादिका-उपनिषद्, गीता, तथा ब्रह्मसूत्र की प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् प्रमुख हैं। उपनिषदों के अध्ययन से भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक स्वरूप का सच्चा परिचय उपलब्ध होता

---

1. तैत्ति० आ० 212 ।

है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "उपनिषद्" वह आध्यात्मिक मानसरोवर हैं, जिससे ज्ञान की भिन्न-भिन्न सरिताए निकल कर इस पुष्प भूमि में मानव मात्र के ऐहिककल्याण तथा मंगल के लिए प्रवाहित होती है।"[1]

उपनिषदों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है। विद्वानों के अनुसार उपनिषद् की सख्या 108 है, जिसमें ऋग्वेद से 10, शुक्लयजुर्वेद से 19, कृष्ण यजुर्वेद से 12, सामवेद से 16 तथा अथर्ववेद से 31 उपनिषदे सम्बद्ध हैं। मुक्तिक उपनिषद् में 10 विशिष्ट उपनिषदों का नाम उल्लिखित किया गया है-

"ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य तित्तिरिः ।

ऐतरेय च छान्दोग्यं वृहदारण्यकं तथा ।।[2]

इस प्रकार उपनिषदों का विस्तृत विवेचन निम्नलिखित हैं

## ईश-उपनिषद्

यह माध्यन्दिनि शाखीय यजुर्वेद संहिता का 40वां अध्याय है । आद्यपदों ईशावास्यमिद सर्वम् के आधार पर इसका यह नामकरण है। इसमें केवल 18 पद्य है, जिनमें ज्ञानदृष्टि से कर्म की उपासना का रहस्य समझाया गया है। यह उपनिषद् कर्म सन्यास का पक्षपाती न होकर यावज्जीवन

---

1 द्र0 वैदिक साहित्य और सस्कृति पृ0 253 ।

2 मुक्तिक उप0 1-30 ।

निष्काम भाव से कर्म सम्पादन का अनुरागी है। इसमें अद्वैत भावना का स्पष्ट प्रतिपादन है। ब्रह्म के स्वरूप के वर्णन के अनन्तर विद्या-अविद्या तथा संभूति-असम्भूति का विवेचन है।

## केन-उपनिषद्

अपने आरम्भिक पद "केनषित-पतति" के कारण यह उपनिषद् केन तथा अपनी शाखा के नाम पर "तवलकार उपनिषद्" कहलाता है। इस छोटे परन्तु मार्मिक उपनिषद् में 4 खण्ड हैं। प्रथम में उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में अन्तर बतलाया गया है। दूसरे में ब्रह्म के रहस्यमय रूप का संकेत है। तृतीय तथा चतुर्थ खण्ड में उमा-हैमवती के रोचक आख्यान द्वारा परब्रह्म की सर्वशक्ति सत्ता तथा देवताओं की अल्पशक्ति सत्ता का सुन्दर निदर्शन है। छोटा होने पर भी दार्शनिक दृष्टि से यह पर्याप्त रूपेण महनीय है।

## कठ-उपनिषद्

कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा का यह उपनिषद् अपने गम्भीर अद्धैत तत्व के लिए नितान्त प्रख्यात है। इसमें दो अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में तीन वल्लियां है। तैत्तिरीय आरण्यक में संकेतित नचिकेता के उपदेशप्रद कथा से यह आरम्भ होता है। नचिकेता के विशेष आग्रह करने पर यमराज उसे अद्वैत तत्व का मार्मिक तथा हृदयंगम उपदेश देते है। नेह

नानास्ति किन्चन'' इस उपनिषद् का गंभीर शंखनाद हैं। नित्यों में नित्य, चेतनों में चेतन वह एक ब्रह्म सभी प्राणियों की आत्मा में निवास करता है। उसी का दर्शन शान्ति का एक मात्र साधन है। योग ही उसके साक्षात्कार का प्रधान साधन हैं। मूंज के इषीका के समान इस शरीर के भीतर विद्यमान आत्मा की उपलब्धि करनी चाहिए- यही इसका व्यावहारिक उपदेश है।

## प्रश्नोनिषद्

इस उपनिषद में छः ऋषि ब्रह्मविद्या की खोज में महर्षि के पास जाते हैं और उनसे आध्यात्मविषयक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। प्रश्नों के उत्तर में निबद्ध होने से इसका नाम ''प्रश्न'' उपनिषद् सर्वथा सार्थक है। प्रश्नों का विषय अध्यात्मजगत् की मान्य समस्यायें हैं, इसमें पिप्पलाद एक उदात्त तत्वज्ञानी के रूप में हमारे सामने आते है। मीमास्य प्रश्न है- 1. प्रजोत्पत्ति कहां से होती है? 2. कितने देवता प्रजाओं को धारण करते हैं? 3. प्राणों की उत्पति, शरीर में आगमन तथा उत्क्रमण आदि विषयक प्रश्न, 4. स्वप्न जागरण तथा स्वप्न दर्शन आदि विषयक प्रश्न, 5. ओंकार की उपासना तथा उससे लोकों की विजय, 6. षोडश कला सम्पन्न पुरुष की विवेचना। इन प्रश्नों के उत्तर में अध्यात्म की समस्त समस्याओं का विवेचन बड़ी सुन्दरता तथा गम्भीरता के साथ किया गया है। अक्षर ब्रह्म का भी प्रतिष्ठा बतलाया गया है।

# मुण्डक-उपनिषद्

"मुण्डक" (मुण्डन सम्पन्न व्यक्तियों) के निमित्त निर्मित यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसमें ब्रह्म अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या का उपदेश देते हैं। यज्ञीय अनुष्ठान का आद्य रूप प्लुत है, जिसके द्वारा संसार का संतरण कभी नहीं हो सकता। इष्टापूर्व-यजादि अनुष्ठान को ही श्रेष्ठ माने वाले व्यक्ति-स्वर्गलोक को पाकर भी अन्ततः इस भूतल पर आते हैं।[1] "इस प्रकार कर्मकाण्ड की हीनता तथा दोषों के वर्णन के अनन्तर ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। द्वैतवाद का प्रधान स्तम्भरूप "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"[2] मंत्र इस उपनिषद में आता है। "वेदान्त शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यही उपलब्ध होता है।[3] ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्मा में लय प्राप्त करने की तुलना नाम रूप को छोड़कर नदियों के समुद्र में अस्त होने से दी गयी है। इसमें सांख्य तथा वेदान्त के तथ्यों का भी किन्चित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। देवताओं का वर्णन मानवीय स्वरूप की दृष्टि से किया गया है। देवतागण का स्थान भी मनुष्य से कुछ ही ऊपर है न कि सर्वोच्च स्थान है।

---

1 मुण्डक उप0 1/2/10 ।
2. मुण्डक उप0 3/1/1 ।
3. मुण्डक उप0 3/2/6 ।

## माण्डूक्य-उपनिषद्

यह उपनिषद् आकार में जितना स्वल्काय है, सिद्धान्त में उतना ही विशाल है। इसमें केवल 12 खण्ड या वाक्य हैं, जिनमें चतुष्पाद आत्मा का बड़ा ही मार्मिक व्याख्या करने का श्रेय प्राप्त है। ओंकार में तीन मात्राएं होती हैं तथा चतुर्थ अंश अमात्र होता है। चैतन्य की तदनुरूप चार अवस्थाएं हैं-वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ तथा प्रपंचोपशमरूपी शिव, जिनमें अन्तिम ही चैतन्य आत्मा का विशुद्ध रूप है। इसके ऊपर गौडपादाचार्य ने चार खण्डों में विभक्त अपनी कारिकाएं "माण्डूक्य" कारिका लिखी है।

## तैत्तरीय-उपनिषद्

यह तैत्तरीय आरण्यक का ही अंश है। यह संहिता उपनिषद् है जो यहां शिक्षा वल्ली के नाम से विख्यात है। आरण्यक का वारूणी उपनिषद् यहां ब्रह्म नन्द वल्ली और भृगुवल्ली के नाम से प्रख्यात है। अतः ब्रह्मविद्या की दृष्टि से वारुणी उपनिषद् का ही प्राधान्य है परन्तु चित्त की शुद्धि तथा गुरु कृपा की प्राप्ति के निमित्त शिक्षावल्ली का भी गौणरुपेण उपयोग है। इसमें कई प्रकार की उपासना तथा शिष्य और आचार्य सम्बन्धी शिष्टाचार का निरुपण है। 11वें अनुवाक् में स्नातक के लिए उपयोगी शिक्षाओं का एकत्र निरुपण है। जिसमें शिक्षा के अन्य आदर्श का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। ब्रह्मानन्द वल्ली में ब्रह्मविद्या का निरुपण है, तदनन्तर भृगु वल्ली में ब्रह्मप्राप्ति का मुख्य साधन पञ्चकोश-विवेक वरुण तथा भृगु के संवाद के रूप में वर्णित है।

## ऐतरेय-उपनिषद्

ऐतरेय आरण्यक के अन्तर्गत चतुर्थ से लेकर षष्ठ अध्यायों का नाम ऐतरेय उपनिषद् है। इसमें तीन अध्याय है, जिनके द्वितीय तथा तृतीय अध्याय तो एक खण्ड के हैं। प्रथम अध्याय में दो खण्ड हैं, जिनमें सृष्टि का मार्मिक विवेचन है, मनुष्य का शरीर ही पुरुष के लिए उपयुक्त आयतन सिद्ध किया गया है। जिसके भिन्न-भिन्न अवयवों में देवाताओं ने प्रवेश किया, तदनन्तर परमात्मा उसके मूर्ध सीमा को विदीर्ण कर प्रवेश करता है, तथा आदरणीय भाव को प्राप्त कर भूतों के साथ तादात्म्य रखता है। तदनन्तर गुरुकृपा से बोध के अनन्तर सर्वव्यापक शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार होता है तथा "इन्द्र" की संज्ञा शुद्ध स्वरूप प्राप्ति होती है। अन्तिम अध्याय में "प्रज्ञान" की विशेष महिमा प्रदर्शित है, जिससे निःसन्देह यह उपनिषद् आदर्शवाद का प्रतिपादक सिद्ध होता है।

## छान्दोग्य-उपनिषद्

यह सामवेदीय उपनिषद् प्राचीनता, गम्भीरता तथा ब्रह्मज्ञान प्रतिपादन की दृष्टि से उपनिषदों में नितान्त प्रौढ़ प्रामाणिक तथा प्रमेय बहुल है। इसमें आठ अध्याय या प्रपाठक है, जिनमें अन्तिम तीन अध्याय ज्ञान की दृष्टि से नितान्त महत्वपूर्ण है। इसके आदि के अध्यायों में अनेक विद्याओं का ऊँकार तथा साम के गूढ़ स्वरूप का विवेचन मार्मिकता से किया गया है। द्वितीय

अध्याय के अन्त में साम उद्गीय है, जो केवल भौतिक स्वार्थपूर्ति के लिए यागानुष्ठान तथा सामगायन करने वाले व्यक्तियों के ऊपर मार्मिक व्यंग्य हैं। तृतीय अध्याय में सूर्य की देवमधु के रूप में उपासना है। गायत्री का वर्णन, घोर अंगिरस के द्वारा देवकी पुत्र कृष्ण को आध्यात्मिक शिक्षा[1] तथा सूर्य का जन्म[2] का सुन्दर वर्णन है। इस अध्याय का प्रसिद्ध सिद्धान्त– ''सर्वखलल्विदं ब्रह्म''[3] अद्वैतवाद का विजय घोष है। चतुर्थ अध्याय में शैव दार्शनिक तथा सतकाम जाबाल तथा उसकी कामो की कथा[4], उपकोशल को सत्काम जाबाल से बह्मज्ञान की प्राप्ति[5] का विस्तृत तथा रोचक विवेचन है। पन्चम प्रपाठक में ब्रह्मणजावालि के दार्शनिक सिद्धान्त केकय अश्वपति के सृष्टि विषयक तथ्यों का विशद वर्णन है, जिनमें 6 विभिन्न दार्शनिकों के सिद्धान्तों का समन्वय किया गया है।[6] षष्ठ प्रपाठक छान्दोग्य का नितान्त महनीय अध्याय है। जिसमें महर्षि आरूणि के प्रतिपादक सिद्धान्तों की रोचक व्याख्या है। तत्वमसि आरूणि का अध्यात्म शिक्षा का पीठस्थानीय मंत्र है। सप्तम प्रपाठक में सनत्कुमार तथा नारद का नितान्त विश्रुत वृतान्त है। इसके अन्तिम प्रपाठक में इन्द्र तथा विरोचन की कथा है तथा आत्मप्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का सुन्दर संकेत किया गया है।

---

1 छा0 उप0 3/17
2. छा0 उप0 3/19
3 छान्दोग्य उप0 3/14/1.
4 छान्दोग्य उप0 4/4/9.
5 छन्दोग्य उप0 4/10/17.
6 छान्दोग्य उप0 5/11/24.

## वृहदारण्यक-उपनिषद्

परिमाण में विशाल होने के साथ-साथ तत्वज्ञान के प्रतिपादन में गम्भीर्य तथा प्रमाणिक यह उपनिषद् है। यह वृहत्तम, विपुलकाय तथा प्राचीनतम उपनिषद् सर्वत्र स्वीकृत है। इसमें 6 अध्याय हैं। इस उपनिषद् का सर्वस्व दर्शनिक है। याज्ञवल्क्य जिनकी उत्तम अध्यात्म-शिक्षा से यह ओत-प्रोत है। प्रथम अध्याय में मृत्यु के द्वारा समग्र पदार्थों की ग्रास किये जाने का प्राण की श्रेष्ठतां विषयक रोचक अख्यायिका तथा सृष्टिविषयक सिद्धान्तों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में अभिमानी गार्गी तथा शान्तस्वभाव काशी के राजा अजातशत्रु का रोचक संवाद है। इसी अध्याय में याज्ञवल्क्य का मैत्रैयी के प्रति उनकी दिव्य दार्शनिक सन्देश की वाणी हमें यही श्रवणगोवन होती है-"आत्मा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यों मन्तव्यों निदिध्यासितव्यो मैत्रैयि"।[1] तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में जनक तथा याज्ञवल्क्य का आख्यान है। पन्चम अध्याय में नाना प्रकार के दार्शनिक विषयों का विवेचन है। षष्ट अध्याय में प्रवहण जावालि तथा श्वेतकेतु आरूणि का दार्शनिक संवाद है, जिसमें जावालि ने पन्चाग्नि विद्या का विशद् विवेचन किया गया है।

## श्वेताश्वेतर-उपनिषद्

यह उपनिषद् तो शैवधर्म के गौरव के प्रतिपादन के निमित्त निर्मित प्रतीत होता है। द्वितीय अध्याय में याग का विषद् विवेचन है। तृतीय से पन्चम अध्याय तक शैव तथा सांख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।

---

1. वृहदा0 उपनिषद् 4/5/6.

अन्तिम अध्याय में गुरुभक्ति का तत्त्व वर्णित है। गुरुभक्ति देवभक्ति का ही रूप है-"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवो तथा गुरौ।"[1] यह उस युग की रचना है जब सांख्य का वेदान्त से पृथक्करण नहीं हुआ था। त्रिगुणों की साम्यावस्थारूपी प्रकृति का विवेचन निःसन्देह है। 'अजामेका' त्रोहितः कृष्ण शुक्लाम्'"[2] परन्तु अभी तक पूरा सांख्य तत्व प्रतीत नहीं होता। सुर प्रधान, अक्षर आदि तत्वों का समावेश गीता ने यही किया है। शिव परमात्मा तत्व के रूप में अनेकशः वर्णित है-"अमृताक्षरं हरः"।[3] इस प्रकार सांख्य तथा वेदान्त के उदयकाल की जानकारी के लिए यह उपनिषद् महत्वपूर्ण है।

## कौशीतकि-उपनिषद्

इस ऋग्वेदीय उपनिषद् में चार अध्याय है। जिसमें प्रथम अध्याय में देवयान तथा पितृयान का विस्तृत वर्णन है, तथा चतुर्थ में बाल्मीकि और अजातशत्रु के अख्यान की पुनरावृत्ति है। द्वितीय तथा तृतीय अध्याय में विशुद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन है। तृतीय अध्याय में पर्वत इन्द्र से ब्रह्म विद्या सीखते हैं, जिसके पर्यवसान में प्राणतत्व का विशद् विवरण है। प्राण प्रथमतः जीवन का तत्त्व है, तदनन्तर जीवन का सत्य है। अन्त में यही प्राण आत्मा का प्रतीक सिद्ध किया गया है, जो जगत् के समस्त पदार्थों का कारण है तथा प्राणिजात उसके हाथों में यन्त्रवत घूमता रहता है।[4]

---

1 श्वेताश्वेतर उप०-6/23.

2 श्वेताश्वेतर उप० 4/5

3 श्वेताश्वेतर उप० 3/4

4 श्वेताश्वेतर उप० 3/4

## मैत्री या मैत्रायणी उपनिषद्

इसमें सांख्य दर्शन के तत्व योग के षडंगों का, तथा हठ योग के मन्त्रसिद्धान्तों का वर्णन दर्शनों के विकास क्रम समझने के लिए नितान्त उपादेय हैं। इस उपनिषद् में सात प्रपाठक हैं। पूरा उपनिषद् गद्यात्मक है। परन्तु स्थान-स्थान पर पद्य भी दिये गये हैं। अन्य उपनिषदों को भी निःसदिग्ध संकेत तथा उद्धरण यहां मिलते हैं। यथा-विद्वान् पुण्य पापे विधूय[1], शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति[2], सर्वमय एव। ईश तथा कठ के उदाहरण सप्तम प्रपाठक में मिलते हैं। इसलिए यह त्रयोदश उपनिषदों में अपेक्षा कृत अर्वाचीन माना जाता है।

## महानारायणोपनिषद् या याज्ञिक्युपनिषद्

सायण भाष्य के साथ प्रकाशित तैत्तिरीय आरण्यक का दशम प्रपाठक और उनके पूर्ववर्ती भट्टभास्कर के भाष्य के साथ प्रकाशित उस ग्रन्थ का छठा प्रपाठक महानारायणोपनिषद् याज्ञिक्युपनिषद् या केवल नारायणीयोपनिषद् के नाम से संबोधित है। बौधायनसूत्रों में इसका विवरण पाये जाने से यह अधिक अर्वाचीन भी नहीं माना जा सकता। उससे नारायण का उल्लेख परमात्मतत्व के रूप में बहुशः किया गया है। साथ ही स्नान, आचमन, होम आदि के लिए उपयुक्त मन्त्रों की सत्ता तथा अन्त में तत्वज्ञानी के जीवन का यज्ञ के रूप में चित्रण है। इन्हीं तथ्यों के आधार

---

1 मैत्रा0 उप0 6/18.

2 मैत्रा0 उप0 6/22,

पर इसका नाम नारायणीय या याज्ञिकी रखा गया है। इसमें आत्मतत्व का निरूपण विशद् रूप में है। एक ही परमसत्ता है। वही सब कुछ है-यस्मात्परं नादूरमस्ति किन्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्योयोस्ति कश्चित् वृक्ष इव स्तब्धों द्रिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पुरुषेण सर्वम्।[1] इस प्रकार के निरूपणों के साथ ही उस परमसत्ता के अभिव्यक्ति स्वरूप अनेक देवों का उल्लेख हैं, और उनसे प्रेरणा प्रदान करने की याचना की गयी है। सत्य, तपस, क्रम, शम, दान, धर्म, प्रजनन, अग्नि, अग्निहोत्र, यज्ञ, मानसोपसान इत्यादि का वर्णन बहुत ही प्रभावोत्पादक है। उदाहरणार्थ सत्य का वर्णन देखते हैं-

सत्येन वायुरावाति सत्येनादित्या रोचते दिवि।

सत्यं वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्व प्रतिष्ठितम्। तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति।[2]

## पाष्कलमन्त्रोपनिषद्

इस उपनिषद् की एकमात्र पाण्डुलिपि आडयार लाइब्रेरी में प्राप्त है। यह ऋग्वेद की अनुपलब्ध वाष्कल शाखा से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् में आत्म तत्व का प्रतिपादन मुख्य विषय है। इसमें कुल मन्त्रों की संख्या 25 है। इस उपनिषद् में आत्मतत्व की विवेचना अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से की गयी है यथा-

---

1 महा0 उप0 अनु0 10 ।

2. महा0 उप0 63/2.

"अहं वेदानामुतायज्ञानामह छन्दसामविदमरयीणाम्
अहंपवाग्नि सरसः परस्य यदि देतीव सरिरस्यमध्ये
अहं चरानिभुवनस्थ महये पुनरुच्चावचं व्यस्नुवानः।
यो माम वेद निहितं गुह्चित् स इतित्या वो भविदाशपध्यै।।
अहमस्मि जरिता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठि नृचक्षा।।
अहं विश्वडडहमस्मि प्रस्तत्वानहमेकोऽस्ति यदिदंनुकिन्च।।[1]

## छाग्लेयोपनिषद्

अत्यन्त लघुकाय यह उपनिषद् भी अडयार पुस्तकालय में प्राप्त है। इस उपनिषद् में कवयः ऐलूष के आख्यान के साथ दार्शनिक उपदेश संग्रहीत है। यह उपनिषद् मात्र 6 अनुच्छेदों का है। इसके अन्त में छाग्लेय नाम होने से इसका नाम छाग्लेयोपनिषद् पड़ा है।

## आर्षेयोपनिषद्

इस उपनिषद् की भी पाण्डुलिपि आडयार से प्राप्त और प्रकाशित है। इसके दस अनुच्छेदों में विश्वमित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ आदि ऋषियों का ब्रह्म विचार परस्पर विमर्श द्वारा वर्णित है।

## शौनकोपनिषद्

यह उपनिषद् भी आडयार पुस्तकालय में प्राप्त एवं वहीं से प्रकाशित है। शौनक ऋषि के उपदेश होने के कारण इसका नाम, शौनकोपनिषद् है। असुरों पर देवों की विजय एवं इन्द्र के महत्व वर्णन के

---

1 वा0 मन्त्रों उप0 क्रमशः 14, 18, 25

साथ ही छन्दों का उल्लेख करते हुए उस की उपसना का उपदेश दिया गया है।

## वेदांग-साहित्य

वेदार्थ के परिज्ञान में, उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादन में तथा इसी प्रकार की अन्य सहायता देने में जो उपयोगी शास्त्र है उन्हीं का नाम वेदांग है। वेदांग की गणना वेद के रूप में नही अपितु वैदिक साहित्य के अन्तर्गत की जाती है। वेद के यथार्थ ज्ञान के लिए विषयों को जानने की आवश्यकता होती है। संक्षेप में मन्त्रों के उचित उच्चारण के लिए शिक्षा का, यज्ञीय कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठान के लिए कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान हेतु व्याकरण का, अर्थ ज्ञान हेतु शब्दों के निर्वचन के निमित्त निरुक्त का, वैदिक छन्दों की जानकारी हेतु छन्द का, तथा अनुष्ठानों के उचित का निर्णय के लिए ज्योतिष का उपयोग है। अत: अपनी इन्हीं उपयोगिताओं के कारण शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये 6 वेदाङ्ग माने जाते हैं। संक्षेप में इनका परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है--

## शिक्षा

वेदाङ्गों में शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य सायण के अनुसार शिक्षा का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ वह विद्या है जो स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की विधि का उपदेश दे-''स्वरवर्णाद्युच्चारण प्रकारां यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।[1] पाणिनीय शिक्षा में शिक्षा को वेद रूपी

---

1 सायण-ऋग्वेद भाष्य भूमिका पृ0 49.

पुरुष का प्राण कहा गया है-"शिक्षा-प्राण तु वेदस्य"। वेद आनुश्रव्य है अतः उच्चारण की महत्ता वैदिक वाङ्मय के पठन-पाठन में महत्वपूर्ण है। जैसा कि पाणिनीय शिक्षा के इस श्लोक में वर्णित आख्यान में स्वर वर्ण आदि के उच्चारण का महत्व प्रतिपादित किया गया है--

"मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तोनतमर्थमाह।
सा वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्"।[1]

शिक्षा की महत्ता एवं उसके अंगों का वर्णन ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में भी प्राप्त होता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, और सन्तान छः अंग बताये गये हैं-शिक्षां व्याचाश्यामः। वर्ण, स्वरः मात्रा, बलं साम-सन्तानः ईत्युक्तः शिक्षाध्यायः।[2] पाणिनीय शिक्षा[3] में इन समस्त अंगों-उपांगो का विस्तृत विवेचन किया गया है। शिक्षा के प्राचीनतम प्रतिनिधि के रूप में प्रातिशाख्य एवं अनेक शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय निम्न है-

## ऋक् प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य ग्रन्थों में ऋक् प्रातिशाख्य प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आचार्य विष्णुमित्र ने शौनक को इस प्रतिशाख्य

---

1. पाणि०शि०-52
2 पाणि० शि० वै० उप०1/2.
3. द्र० पणि० शि० श्लोक 32-35.

का रचनाकार बताया है तथा इस प्रातिशाख्य के रहस्यवेदी अपने आप को परिषद् में श्रेष्ठ कहा है।[1] इस प्रातिशाख्य में 18 पटल है जिसमें संज्ञा, सन्धि, स्वर, क्रमपाठ, व्यजन, वर्णदोष तथा विविध छन्दों का विवरण वर्णित है। इस प्रातिशाख्य साक्ष्य का सम्बन्ध ऋग्वेद से है।

## वाजसनेयि प्रातिशाख्य

शुक्ल यजुर्वेदीय यह प्रातिशाख्य कात्यायन मुनि की रचना है आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार इस प्रातिशाख्य के रचनाकार कात्यायन वार्तिककार कात्यायन से भिन्न हैं। तथा पाणिनि से भी प्राचीनतर है,[2] आठ अध्यायों में विभक्त इस प्रातिशाख्य में परिभाषा, स्वर तथा संस्कार-त्रिविध विषयों का विस्तृत विवेचन है। प्रतिज्ञासूत्र और भाषिकसूत्र इस प्रातिशाख्य से सम्बद्ध दो लघुकाय ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है।[3]

## तैत्तिरीय प्रातिशाख्य

तैत्तिरीय संहिता से सम्बद्ध इस प्रातिशाख्य में दो प्रश्न अर्थात् खण्ड तथा प्रत्येक प्रश्न में 12-12 अध्याय है। इसके प्रथम प्रश्न में वर्ण साम्य, शब्द स्थान तथा शब्द की उत्पत्ति प्रकार, नाना प्रकार के स्वर एवं वर्ग सन्धिया, मूर्धन्य विधान आदि विषयों का विवेचन है। द्वि तीय प्रश्न में नकार का तत्व विधान, अनुस्वार तथा अनुनासिक, भेद,

---

1. ऋ0प्रा0 श्लोक 5/6/7.
2. ऋ0प्रा0 श्लोक 5/6/7.
3 वै0स0सं0 पृष्ठ 302.

स्वरित भेद, संहिता स्वरूप आदि अनेक उपादेय विषयों का विवेचन किया गया है।

## पुष्प सूत्र

पुष्प ऋषि द्वारा प्रणीत यह सामवेदीय प्रातिशाख्य है। इसमें 10 प्रपाठक है। सामवेद से सम्बद्ध होने से इसमें स्तोम का विशेष विवेचन है तथा मन्त्रों के उल्लेख है। स्तोम का विधान और अपवाद होता है। गायनोंपयोगी अन्य सामग्री के संकलन के कारण यह प्रातिशाख्य नितान्त उपादेय है।

### 5. ऋक् तन्त्र

यह ग्रन्थ कौथुम शाखा से सम्बद्ध है। पूरा ग्रन्थ सूत्रात्मक है। समग्र सूत्रों की संख्या 280 है जो 5 प्रपाठकों या अध्यायों में विभक्त है। इस प्रातिशाख्य के रचयिता महर्षि शाकटायन हैं।

## शौनकीया या चतुरध्यायिका

यह प्रातिशाख्य चार अध्यायों में विभक्त है। इस प्रातिशाख्य का नाम शौनकीय के द्वारा प्रदान किया गया है। यह सबसे प्राचीन अर्थववेदीय प्रातिशाख्य है। इसी के समानान्तरण अर्थववेद प्रातिशाख्य सूत्र के नाम से भी एक प्रातिशाख्य उपलब्ध होता है, जो अथर्व प्रातिशाााख्य के नाम से प्रसिद्ध है।

**अन्य शिक्षा ग्रन्थः-**

शिक्षा ग्रन्थों में पाणिनीय शिक्षा अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें 60 श्लोक है जिनमें उच्चारण विधि से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का बड़ा ही उपादेय विवरण प्रस्तुत किया गया है। पाणिनि सम्मत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के कारण इसका नाम पाणिनीय शिक्षा है। शिक्षा ग्रन्थों में याज्ञवल्क्य शिक्षा अपेक्षाकृत बड़ी है। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता से सम्बद्ध इसमें 252 श्लोक है। इसमें वैदिक स्वरों का उदाहरण के साथ विशिष्ट तथा विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त, वशिष्ट शिक्षा कात्यायनी शिक्षा, पराशरी शिक्षा, माण्डन्य शिक्षा अमोघ नन्दिनी शिक्षा, माध्यन्दिनी शिक्षा वर्ण रत्न प्रदीप शिक्षा, केशवी शिक्षा, मल्लशर्मशिक्षा, स्वराकुश शिक्षा, षोडष श्लोकी शिक्षा, अवसान निर्णय, स्वर भक्ति लक्षण शिक्षा, प्रातिशाख्य प्रदीप शिक्षा, नारदीय शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा, क्रमसन्धान शिक्षा प्रभृति अन्य अनेक शिक्षाग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

इन शिक्षा ग्रन्थों के अतिरिक्त वेदांग से सम्बद्ध आपिशील, पाणिनि तथा चन्द्रगोभी रचित शिक्षा सूत्र भी प्रकाशित है।[1]

**कल्प**

वेद विहित कर्मो का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाले शास्त्र को कल्प कहा जाता है-"कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्"।[2] यज्ञ यागादि तथा विद्याहोपनयनादि कर्मो का विशिष्ट

---

1 द्र0 शिक्षा सूत्राणि काशी स0 2005

2. विष्णुमित्र ऋक्0 पा0 पृष्ठ 13

प्रतिपादन वैदिक ग्रन्थों में किया गया है। उन्हीं का क्रमवद्ध वर्णन करने वाले सूत्रों की सामान्य सज्ञा कल्प है। कल्प सूत्र मुख्यत: चार प्रकार के हैं। 1. श्रौतसूत्र, 2. गृहसूत्र, 3. धर्मसूत्र, 4. शुल्वसूत्र।

**1. श्रौतसूत्र**

श्रौतसूत्र का मुख्य प्रातिपादित विषय श्रुति-प्रतिपादित-महत्वपूर्ण यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन है। इन यज्ञों के नाम हैं-दर्श, पूर्णमास, पिण्डपितृयाग, आर्ग्रयणोष्टि, चातुर्मास्य, पशु-सोमयाग, सूत्र, गवामपन, वाजपेय, राजसूय, सौत्रायणी, अश्वमेघ, पुरुषमेध, एकाहयाग, अहीन अग्नि स्थापना के अनन्तर, याग विधान विहित है।

**ऋग्वेद में दो श्रौतसूत्र हैं**- 1. आश्वलायन तथा 2. शांखायन[1] जिसमें प्रतिपाद्य विषयों की ओर विशेष लक्ष्य करते हुए का अनुष्ठान है। इनमें पुरह्नुवाक्या तथा तत्शास्त्रों के अनुष्ठान प्रकार उनके देश काल तथा कर्ता का विधान, स्वर प्रतिकार-प्रायश्चित आदि का विधान विशेष रूप से वर्णित है। आश्वालायन श्रौतसूत्र में 12 अध्याय हैं, तथा शांखायन श्रौतसूत्र 18 अध्यायों में विभक्त है।

यजुर्वेदीय कल्पसूत्र-शुक्ल यजुर्वेद का एक मात्र श्रौतसूत्र है। कात्यायन श्रौतसूत्र परिमाण में बड़ा है। इसमें 26 अध्याय है। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध निम्न श्रौतसूत्र की उपलब्धि होती है। 1. बौधायन श्रोतसूत्र, 2.

---

1. शाखायन श्रौतसूत्र संस्करण हिलेब्रान्ट के द्वारा, बिल्लो0 इण्डिका ।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, 3. हिरण्य, 4. वैखानस, 5. भारद्वाज तथा 6. मानव श्रौतसूत्र। इनमें से प्रथम पाँच तो तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध रखते है तथा अन्तिम मैत्रायणी शाखा से।

सायणवेदी कल्पसूत्रों, सामवेद की तीनों शाखाओं के कल्पसूत्र आज सुरक्षित तथा उपलब्ध हैं, जिसमें कात्यायन श्रौत सूत्र का सम्बन्ध कौथुम शाखा प्राह्यायण श्रौतसूत्र का सम्बन्ध राणायनीय शाखा से तथा जैमिनीय श्रौतसूत्र का जैमिनि शाखा से है। इसमें देवताओं का विवेचन नहीं के बराबर है।

अथर्ववेदीय श्रौतसूत्रों में वैतान श्रौतसूत्र ही उपलब्ध है।

## 2. गृह्यसूत्र

ऋग्वेदों के गृहसूत्रों में दो ही गृह्यसूत्र सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इनमें नाम हैं-आश्वलायन-गृहसूत्र तथा शांखायन गृहसूत्र। यजुर्वेदीय कल्पसूत्र-शुक्लयजुर्वेद का एकमात्र श्रौतसूत्र है। गृह्य सूत्र पारस्कर गृहयसूत्र के नाम से विख्यात है। यह तीन काण्ड में विभक्त है। कृष्ण यजुर्वेद का बौधायन गृह्यसूत्र सम्पादित होकर प्रकाशित है। सामवेदी कल्प सूत्र सामवेद का मुख्य गृह्यसूत्र कौथूमशाखीय गोभिल गृह्य सूत्र है। इनके अतिरिक्त जैमिनीय गृह्यसूत्र हैं। अथर्ववेदीय कल्पसूत्र में कौथिम गृह्य सूत्र एकमात्र गृह्य सूत्र है।

### 3. धर्मसूत्र

धर्मसूत्र कल्प के अविभाज्य अंग है। नियमतः प्रत्येक शाखा का अपना विशिष्ट धर्मसूत्र होना चाहिए परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। केवल बौधायन, आपस्तंम्भ तथा हिरण्यकेशी के कल्पसूत्रों को ही उपलब्धि पूर्ण रुपेण होती है। धर्मसूत्र में चतुवर्णो के कर्म तथा वर्णन प्रकार के साथ-साथ राजधर्म का वर्णन मुख्य है। राजा के कर्तव्य, प्रजा के साथ सम्बन्ध, व्यवहार के नियम, अवस्था विशेष में प्रायश्चित का विधान धर्मसूत्र को महत्व प्रदान करता है।

धर्मसूत्रों में प्रीचनतम ग्रन्थ गौतम का धर्मसूत्र माना जाता है। जिसका सम्बन्ध कुमारिल के साथ सामवेद से है। चक्रव्यूह में निर्दिष्ट राणायनीय शाखा के 9 अवान्तर शाखाओं में गौतम अन्यतम है।

कृष्ण यजुर्वेदीय कल्पकारों में प्राचीनतम आचार्य बौद्धायन ने धर्म सूत्र भी लिखा है जो उनके कल्पसूत्र का एक अंशमात्र है। बौद्धायन कृत बौद्धायन धर्मसूत्र का अस्तित्व मानता है। इनका ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है, जिनमें अन्तिम प्रश्न सम्भवतः परिशिष्ट तथा अर्वाचीन कालीन माना जाता है, आपस्तम्भ कल्पसूत्र के दो प्रश्न आपस्तम्भ धर्म सूत्र के नाम से विख्यात है।

1. हिरण्यकेश धर्म सूत्र[1], 2. विष्णु शास्त्र।

---

1 दोनों ग्रन्थों का सस्करण आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि में सकलित है।

## व्याकरण

व्याकरण भी प्रकृति और प्रत्यय का उपेदश देकर पद के स्वरूप तथा उनके अर्थ के निर्णय के लिए प्रयुक्त होता है। व्याकरण का व्युत्पत्ति लब्ध अर्थ है पदों की मीमासा करने वाला शास्त्र, व्याक्रियन्तें शब्द अनेनेति व्याकरणम्। व्याकरण वेद पुरुष का मुख माना जाता है-मुखंव्याकरणम् स्मृत् मुख होने से ही वेदांगों में व्याकरण की प्रधानता है। जिस प्रकार मुख के बिना भोजनादि के न करने से शरीर की पुष्टि असम्भव है उसी प्रकार व्याकरण के बिना वेद रूपी पुरुष के शरीर की रक्षा तथा स्थिति असम्भव है। इसलिए हमारे प्राचीन ऋषियों ने व्याकरण की महत्ता का प्रतिपादन बड़े ही गम्भीर शब्दों में किया है। ऋग्वेद के एक सुप्रसिद्ध मंत्र में शब्द का वृषभ से रूपक बताया गया है। जिससे व्याकरण ही कामों की पूर्ति करने के कारण वृषभ नाम से उल्लिखित किया गया है। इसके चार सींग हैं। 1. नाम, 2. आख्यात, 3. उपसर्ग, 4. निपात।

चत्वादि शृङ्गा त्रंयो अस्य पादा
द्वे ये शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महोदेवो मर्त्यॉं अविवेश।।[1]

वररुचि के अनुसार व्याकरण से निम्न पाँच प्रयोजन निम्नलिखित हैं।

1. रक्षा, 2. ऊच्च, 3. आगम, 4. लघु, 5. असन्देह।

---

1. ऋ0 वे0 IV 58/6.

महर्षि शाकटायन ने ऋकतंत्र में लिखा है कि व्याकरण का कथन ब्रह्मा ने वृहस्पति से किया, वृहस्पति ने इन्द्र से, इन्द्र ने भरद्वाज से, भरद्वाज ने ऋषियों से ऋषियों ने ब्राह्मणों से।

## ऐन्द्र व्याकरण

यह व्याकरण ग्रन्थ रूप में था, इन्द्र के द्वारा इसकी रचना किये जाने का वर्णन स्फुट प्रतीत होता है, इसका परिचय निम्न प्रमाणों से चलता है।

1- नन्द केश्वर स्मृत काशिकावृत्ति की तृव विमर्शिणी व्याख्या में उपमन्यु ने लिखा है- तथा योक्तम् इन्द्रेण अन्तर्वसमुद्भूत धातवाः परिकीर्तिताः इति।

2- वररुचि ने ऐन्द्र निघष्टु के आरम्भ में ही इसका निर्देश किया है।

3- वामदेव ने संस्कृत के भाष्य व्याकरण सम्प्रदायों में प्रथम स्थान इन्द्र को दिया है।

4- सारस्वत प्रक्रिया के कर्ता अनुभूति स्वरूपाचार्य ने भी इन्द्र को ही शब्द सागर के पार करने के उद्योगी पुरुषों में प्रथम बतलाया है।

आजकल व्याकरण रूपी वेदाड्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला एक ही व्याकरण है और वह है पाणिनीय व्याकरण। महर्षि पाणिनि ने लगभग 400 अल्पाक्षर-सूत्रों के द्वारा संस्कृत भाषा का नितान्त वैज्ञानिक व्याकरण प्रस्तुत कर विद्वानों को आश्चर्य में डाल दिया है। वैज्ञानिक दृष्टि से

देवभाषा का जितना सुन्दर शास्त्रीय विवेचन पाणिनि ने किया है वैसा विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि पाणिनि जैसा भाषा-मर्मज्ञ वैयाकरण संसार में अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। पाणिनी का ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है, इसीलिए यह अष्टाध्यायी कहलाता है। इसका समय ईसा-पूर्व षष्ठशतक है। पाणिनि के अनन्तर संस्कृत में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की व्याख्या करने के उद्देश्य से कात्यायन ने ईसा पूर्व द्वितीय शतक में पातञ्जलि ने महाभाष्य का निर्माण किया। सूत्रों पर भाष्य अनेक है, परन्तु विषय की व्यापकता, विचार की गम्भीरता के कारण यही भाष्य महाभाष्य के गौरवपूर्ण अभिधान को प्राप्त कर सकता है। इसे व्याकरण का ही ग्रन्थ मानना अनुचित होगा, व्याकरण के दार्शनिक सिद्धान्तों की मीमांसा सर्व-प्रथम हमें यहाँ उपलब्ध होती है। इसका गद्य नितान्त प्रान्जल तथा साहित्यिक है। ग्रन्थकार ने कथोपकथन की शैली में समग्र ग्रन्थ की रचना नितान्त मनोरंजक रूप में की है। व्याकरण के ये ही मुनित्रय है- पाणिनि, कात्यायन और पातञ्जलि।

## निरुक्त

निरुक्त निघण्टु की टीका है। निघण्टु में वेद के कठिन शब्दों का समुच्चय किया गया है। निघण्टु की संख्या में पर्याप्त मतभेद है। आजकल उपलब्ध एक ही है और इसी के ऊपर महर्षि यास्क-रचित निरुक्त है।

## यास्क का निरुक्त

"निरुक्त" वेदांगो में अन्यतम है। आजकल यही यास्करचित निरुक्त इस वेदांग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। निरुक्त में 12 अध्याय हैं. अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट रूप में दिये गये है। परिशिष्ट वाले अध्याय भी अर्वाचीन नहीं माने जा सकते हैं क्योंकि सायण तथा उव्वट इन अध्यायों से भली-भाँति परिचय रखते हैं। उव्वट ने यजुर्वेद भाष्य[1] में निरुक्त[2] में उपलब्ध वाक्य को निर्दिष्ट किया है। अतः इस अंश का प्राचीन होना स्वतः सिद्ध है।

यास्क ने इस प्रकार के युक्ति व्यूह से स्पष्टतः प्रतिपादित किया है कि समस्त नाम धातुज है और वर्तमान भाषा शस्त्र का यही मान्य सिद्धान्त है।

## छन्द

छन्द वेदांग का पाँचवाँ अंग है। वेद के मन्त्रों के उच्चारण के निमित्त छन्दों का ज्ञान बड़ा ही आवश्यक है। छन्दों का बिना ज्ञान हुए मन्त्रों का उच्चारण तथा पाठ ठीक ढंग से नहीं हो सकता है। प्रत्येक सूक्त में देवता ऋषि तथा छन्द का ज्ञान आवश्यक माना जाता है। कात्यायन का यह स्पष्ट कथन है कि जो व्यक्ति छन्द ऋषि तथा देवता

---

1 यजु0 भाष्य-17/77.

2 निरूक्त-13/13

के ज्ञान से ही हीन होकर मन्त्र का अध्ययन तथा अध्यापन, यजन तथा याजन करता है उसका प्रत्येक कार्य निष्फल ही होता है। प्रधान छन्दों के नाम संहिता तथा ब्राह्मणों में उपलब्ध होते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इस अंग की उत्पत्ति वैदिक युग में हो गयी थी। इस वेदांग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ के रचयिता कब हुए? इसका पर्याप्त परिचय नहीं मिलता है। यह ग्रन्थ सूत्र रूप में है और आठ अध्यायों में विभक्त है। आरम्भ के चारों अध्याय के सातवें सूत्र वैदिक छन्दों के लक्षण दिये गये हैं तदन्तर लौकिक छन्दों का वर्णन है।

यास्क ने छन्द की व्युत्पत्ति छद् धातु (ढकना) से बतलाई है। छन्दों को छन्द कहे जाने का रहस्य यही है कि ये वेदों के आवरण हैं। इसी अर्थ की पुष्टि इस सारगर्भित वाक्य में उद्धृत हुआ है। ''यदनेन आत्मानमाच्छादयन देवा मृत्योर्विभ्यतः तत्छन्दसां छन्दस्त्वम्''[1] पीछे वेद के लिए छन्द का प्रयोग उपचार वशात् होने लगा है। वेदों का बाह्य रूप छन्दोबद्ध होने से यह गौण प्रयोग अवान्तर काल में होने लगा।

### 6. ज्योतिष

वेदांगों में ज्योतिष अन्तिम वेदांग है। वेद की 'प्रवृत्ति' यज्ञ के सम्पादन के लिए है। और यज्ञ की विद्या विशिष्ट समय की अपेक्षा रखता है। यज्ञ-याग के लिए समय-शुद्धि की बड़ी आवश्यकता होती है। कुछ

---

1. यह वाक्य छन्दोग्य उप0 1/4/2 में पाया जाता है.

विधान ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध सम्वत् से है, किसी का ऋतु से है। तैत्तिरीय ब्राह्मण की कथा है कि ब्राह्मण बसन्त में अग्नि का आधान करें क्षत्रिय ग्रीष्म में, वैश्य शरद् ऋतु में आधान करें-

बसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ग्रीष्मे राजन्य आदधीत शरदिवैश्य आदधीत[1]

वेदांग ज्योतिष का प्रतिनिधि ग्रन्थ दो वेदों से सम्बन्ध रखने वाला उपलब्ध होता है। 1. यजुर्वेद से, 2. ऋग्वेद से फिर

याजुष ज्योतिष तथा 2. आचार्य ज्योतिष। पहले में 42 श्लोक हैं और दूसरे में 36।

गणना के लिए इस ग्रन्थ में 5 वर्ष का एक युग माना जाता है। इन वर्षो के नाम सम्बत्सर है, परिवत्स, अनुवत्सर और इद्वत्सर, ये नाम तैत्तिरीय ब्राह्मण में दिया गया है। उस समय वर्ष माघ मास से आरम्भ होता था। ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में 12 राशियों से गणना की जाती है परन्तु इस ज्योतिष में राशियों का कहीं नाम निर्देश नहीं है। प्रत्युत् गणना के आधार पर शक्तया नक्षत्र ही हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार वेदाड्ग ज्योतिष की रचना ई0पू0 1400 वर्ष में ही की गयी होगी। सुदूर प्राचीन काल से सम्बद्ध होने से ही यह ग्रन्थ इतना दुरूह और दुर्वोध हो गया है।

---

1 तै0 ब्रा0 1/1.

## द्वितीय अध्याय

## वैदिक देवताओं का वर्गीकरण और मरुद्गण का स्थान

एकल देवता

युगल देवता

गण देवता

क्षणिक देवता

विशेष देवता

वैयक्तिक देवता

आकाशस्थ देव

अन्तरिक्षस्थ देव

पृथ्वीस्थ देव

# वैदिक देवताओं का वर्गीकरण और मरुद्गण का स्थान

वैदिक देवताओं का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है। प्राचीन भारतीय ऋषियों की विचारधारा से लेकर आधुनिक, प्राच्य और पाश्चात्य विचारधाराओं का धरातल विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत है। सर्वप्रथम हम वैदिक ऋषियों की वाणी को ही आधार मानकर देवताओं का वर्गीकरण कर सकते हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में देवताओं की संख्या 33 या "त्रिभिः एकादश" कहीं गयी हैं। इसी संख्या को अनेक स्थानों पर ग्यारह का तीन गुना के रूप में निरुपति किया गया है।

ऋग्वेद[1] के ही मंत्रानुसार 11 देवता स्वर्ग में, 11 देवता अन्तरिक्ष (जल)[2] में तथा 11 देवता पृथिवी पर रहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में संदर्भित है कि 12 आदित्य, 11 रुद्र एवं 8 वसु हैं। द्यौ तथा पृथिवी को

---

1. ऋ0 I 139/11 ।
2 ए0ए0 मैकडोनेल: वैदिक माइथोलॉजी में ऋग्वेद के मत्र में अप्सुक्षितः का अर्थ जल करते है। डॉ0 सूर्यकान्त (अनुवाद) वै0 दे0 पृष्ठ 36 ।

मिलाकर कुल 33 देवता है। केवल प्रजापति नामक एक नवीन देवता का आविर्भाव हुआ है।[1] ऋषि याज्ञवल्क्य ने देवताओं की संख्या 303 या 3003 भी बताया है।

ऋग्वेद में प्रयुक्त हुए देवताओं के नामों की संख्या के आधार पर इनको पांच श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।[2]

1. इन्द्र, अग्नि, सोम ।
2. अश्विन्, मरुत्, वरुण ।
3. उषस्, सविता, बृहस्पति, सूर्य, पूषा ।
4. वायु, द्यावा-पृथिवी, विष्णु, रुद्र ।
5. यम एवं पर्जन्य ।

ये देवता कभी एकल प्रस्तुत होते हैं और कभी अन्य देवताओं के साथ । इस आधार पर उनका वर्गीकरण त्रिविभागों में किया जा सकता है।

---

1. श0ब्रा0 4/5/7/2, 5/1/2/13 आदि ।
2 डॉ0 सूर्यकान्त (अनुवादक) वै0दे0 पृष्ठ 39 ।

1. **एकल देवताः**

जिस देवता की स्तुति अकेले की जाती है वह एकल देवता की श्रेणी में आता है। यथा-वरुण, मित्र, सविता, सूर्य, विष्णु, इन्द्र, विवस्वान्, उषस्, अश्विन्, मातरिश्वा, पर्जन्य, अग्नि, पृथिवी, बृहस्पति, सोम, विश्वकर्मा, प्रजापति, श्रद्धा, सुनृता, काल, अदिति, सरस्वती, वाक्, इन्द्राणी, अश्विनी आदि देव-देवियाँ हैं।

2. **युगल देवताः**

युग्म रूप में जिन देवताओं की स्तुति होती है वे इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है। यथा-मित्रावरुणा, इन्द्राग्नि, इन्द्रावरुणा द्यावापृथिवी, इन्द्रासोमा, अग्निपर्जन्या, इन्द्राविष्णू, सोमापूषणा, पर्जन्यावाता आदि हैं।

3. **गण देवता**

जिन देवताओं की स्तुति सामूहिक रूप से होती है वे इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। यथा-मरुद्गण, रुद्रगण, आदित्य-गण, वसु-गण, विश्वेदेवाः आदि ।

संहिताओं में प्राप्त वर्गीकरण को ही ध्यान में रखकर संभवतः यास्क ने तीन ही रूपों में देवों का वर्गीकरण किया है-

त्रिस्त्रः एव देवता इति नैरुक्ताः अग्निः पृथिवीस्थानीयः,

वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः ।।[1]

बृहद्देवताकार ने भी संपूर्ण देवताओं को इन्हीं तीन प्रमुख देवों का विविध रूप मानकर देवों के त्रित्ववाद का प्रतिपादन किया है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल की एक ऋचा[2] के तीन विभागों का अनुसरण करके यास्क ने विभिन्न देवताओं को[3], या एक ही देवता के विभिन्न रूपों को जिनकी गणना निघण्टु के पंचम काण्ड में किया है उनमें पृथिवी स्थान, अन्तरिक्ष स्थान और द्युस्थान इन तीन वर्गों में बाँटा है।

इसी प्रसंग में आगे चलकर यास्क कहते हैं कि इनमें से प्रत्येक देवता के अपने-अपने क्रियाकलाप के कारण ये अनेक अभिधान रखते है, जैसे कि एक ही व्यक्ति के प्रसंगवश-होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा ये

---

1. निरू0 7.2 ।
2 ऋ0 I 139/11 ।
3. निरू0 7.5 ।

नाम पड़ जाते है। इस प्रकार कर्म की पृथकता के अनुसार एक देवता के अनेक नाम दृष्टिगत होते है। यथा- मरुत्गण की अनेक उपाधि है- त्रिषत्तासः, सुदानव, तुविष्मान्, घृष्णु, वृष्टिकर्म, क्रीडक इत्यादि ।

यास्क का कथन है कि देवों की एकता इनके स्थान तथा कार्यो की समानता से ही निर्धारित की गई है।[1] इस प्रकार जो देवता एक ही स्थान से तथा एक ही प्रकार के कार्य से सम्बद्ध है उनका एकत्व स्वीकार्य ही है।

वृहद्देवताकार शौनक का कथन है कि मुख्य रूप से देवता तीन ही है और शेष उनकी विभूतियाँ मात्र है, यही कारण है कि मंत्रों में एक देवता को दूसरे देवता का उत्पादक कहा गया है।

आधुनिक काल के अनेक पाश्चात्य विद्धानों ने वैदिक देवों के वर्गीकरण का प्रयास किया है। मैकडोनल ने ''त्रिविभागीय'' विभाजन को स्वीकार किया है।[2] इसके अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न वैदिक देवताओं का,

---

1. तत्र संस्थामनैकत्वं सम्भोगैकत्व पोरोक्षितव्यम् ।
2 मैकडोनल वै० मा० पृ० 20-21 ।

उनकी आपेक्षिक-महत्ता (छोटे बड़े के आधार पर) के अनुसार भी वर्गीकरण किया है।

ऋग्वेद की ऋचा में कहा गया है:-

''नमो महद्भ्यो, नमो अर्भकेभ्यो, नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्य:।[1]

अर्थात् बड़े, छोटे, युवक एवं वृद्ध सभी देवता को हम नमस्कार करते हैं।

एक अन्य मंत्र में देवों को सम्बोधित करते हुए ऋषि का कथन है-

''नहि वो अस्त्यर्थको देवासो न कुमारक: ।

विश्वे सतोमहान्त इत् ।।

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थं त्रटाश्च त्रिंशच्च ।

मनोर्देवा यज्ञियास: ।।[2]

अर्थात् हे देवो, तुममें से न तो कोई अर्भक है और न कुमार है, तुम सभी महान हो ।

यह भावना सभी देवताओं के महत्त्व को बताता है। यदि आपेक्षिक महत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो इन्द्र, अग्नि और वरुण सबसे

---

1 ऋ० 1-27-13 ।

2 ऋ० VIII 30-1,2 ।

महान देवता है। इन्द्र शक्ति तथा युद्ध का देवता है। इन्द्र के सहायक मरुद्गण का भी महान योगदान है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय मे प्रयुक्त देवतओं के नामों की संख्या के आधार पर भी मैकडोनल ने इन देवताओं का वर्गीकरण पाच वर्गो में किया है?[1]

1. इन्द्र, अग्नि, सोम ।

2. अश्विन, मरुत्, वरुण ।

3. सविता, वृहस्पति, सूर्य, ऊष्मा ।

4. वायु, द्यावापृथिवी, विष्णु, रूद्र ।

5. यम, पर्जन्य ।

इस दृष्टि से किया गया वर्गीकरण समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि इससे देवताओं के महत्त्व को आंकने में कठिनाई आती है।

आर्थर बेरीडेल कीथ[2] ने महान देवता के अन्तर्गत द्युस्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय, पृथ्वी स्थानीय के अतिरिक्त प्रकृति के छोटे देवता,

---

1. मैकडोनल वै0 मा0 पृ0 20 ।
2. दि रिलीजन एण्ड फिलोसफी ऑफ दी वेद एण्ड उपनिषद् ।

भावाकृति देवता और वैयक्तिक देवता तथा अन्य देव-वर्ग, इस प्रकार से देवों का वर्गीकरण किये हैं।

जर्मन विद्वान् उजेनर ने देवमण्डल के स्वरूप के विकास की तीन स्थितियों का आकलन किया है।[1]

**1. क्षणिक देवता**

ऐसे देवता जो किसी विशेष क्रिया के ऊपर केवल उतने ही क्षण तक अधिकार रखते है, जब तक वह क्रिया होती रहती है। ऐसे देवता सभ्यता के विकास के बहुत प्रारम्भिक काल में पाये जाते हैं। वैदिक साहित्य में इनका विशेष चिन्ह उपलब्ध नहीं हैं।

**2. विशेष-देवता**

जीवन या प्रकृति के किसी विशेष क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले तथा उस पर पूर्ण अधिकार करने वाले देवता इस श्रोणी में आते हैं। इन देवताओं का विवेचन भी सम्पूर्णता के संदर्भ में किया जाता है। उदाहरण के लिए मरुद्गण, उषस्, अग्नि आदि ।

---

1. गया चरण त्रिपाठी ''वै०दे०उ०वि०पृ० 193 ।

3. **वैयक्तिक देवताः**

ऐसे देवता जो धीरे-धीरें अन्य देवताओं के गुणों को आत्मसात् करके अपने व्यक्तितत्व को विकसित कर किसी विशेष क्षेत्र से पृथक होकर स्वतंत्र हो जाते है तथा वैयक्तिक देवता बन जाते है, यथा इन्द्र, वरुण आदि ।

वैयक्तिक देवता विशिष्टि देवताओं के बाद में विकसित हुये हैं। इनका जन्म अनेक विशिष्ट देवों के व्यक्तितत्व तथा कार्य क्षेत्र के मिलने से होता है। इस प्रकार कुछ मुख्य विशिष्ट देवता धीरे-धीरे अधिक सक्रिय तथा शक्तिशाली होकर अन्यान्य तुच्छ देवों के व्यक्तितत्व को आत्मसात् कर वैयक्तिक देवता बन जाते हैं।[1]

वैदिक देवों की धारणा में ये तर्क अधिक संगत तथा सत्य के समीप है कि आर्य देवता प्रारम्भ में प्रकृति के किसी एक तथा महत्त्वपूर्ण दृश्य के मानवीकरण थे किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया इन देवों का व्यक्तितत्व विखरने लगा और वे अनेक देवों में बँट गया । जैसे भारोपीय काल में आकाश के प्रत्येक दृश्य से सम्बन्धित द्यौस् नामक केवल एक

---

1 द्रष्टव्य वैदिक देवता उद्‌भव और विकास ।

देवता था, किन्तु ऋग्वेद के समय तक आते-आते इस देवता का महनीय व्यक्तित्व क्षीण पड़ गया और यह सूर्य, विष्णु, सवितृ तथा मित्र आदि प्रकाश से सम्बन्धित अनेक छोटे-छोटे देवताओं में विभक्त हो गया ।

वैदिक देवताओं के वर्गीकरण का एक ऐतिहासिक पक्ष भी है, जिसके अनुसार "काल" के आधार पर देवताओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। भारतीय काल, भारत-ईरानी काल तथा भारोपीय काल। जो देवता भारत तथा ईरान के देवमण्डलों में समान हैं वे बहुधा प्राचीन समझे जाते हैं। लेकिन रूद्र, विष्णु, बृहस्पति आदि देवताओं के विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि वे भारत में ही उत्पन्न हुये हैं। किन्तु देवताओं के सम्बन्ध में इस प्रकार का वर्गीकरण पूर्णतः सत्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा कोई ऋग्वैदिक देवता हो सकता है जिसकी उत्पत्ति के निश्चित काल का परिज्ञान हमें न हो ।

पाश्चात्य विद्धानों में ब्लूमफील्ड का वर्गीकरण भी सुव्यवस्थित आधार पर है। उन्होंने वैदिक देवों का वर्गीकरण पांच रूपों में किया है।[1]

---

1 द्रष्टव्य, "रिलिजन ऑफ दि वेद" पृ0 88-89 ।

1. प्रागैतिहासिक काल के देवता ।

2. पारदर्शी या स्पष्ट देवता ।

3. अल्प पारदर्शी या धूमिल देवता ।

4. अपारदर्शी अथवा अस्पष्ट देवता ।

5. अमूर्त भावात्मक तथा प्रतीकात्मक देवता ।

उपर्युक्त सभी विभाजनों में यास्क मुनि का ही विभाजन सर्वाधिक मान्य है। उन्होंने सम्पूर्ण देवताओं को विश्व में उनकी स्थिति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया है-

**प्रथम आकाशस्थ देव** :- वरुण, सूर्य, मित्र, सवितृ, पूषम्, विष्णु, विवस्वान्, उषस्, आदित्यगण आदि ।

**द्वितीय अन्तरिक्षस्थ देव** :- इन्द्र, मरुद्गण, वायु, त्रित, रूद्र, पर्जन्य, अपांनपात्, मातरिश्वन् आदि ।

**तृतीय पृथ्वीस्थ देव** :- अग्नि, बृहस्पति, सोम, नदियां तथा पृथिवी आदि ।

वस्तुतः वैदिक ऋषि आत्मा की विभुता से परिचित था, अतः वैदिक देवता एक ही आत्मा का विविध रूपों में व्यक्तीकरण है । सभी देवता एक ही परमात्व देव की विभूतियाँ मात्र है। उनके भिन्न-भिन्न अंशों को लेकर भिन्न-भिन्न देवताओं की कल्पना कर ली जाती है। वैदिक देवताओं के सम्बन्ध में कुछ विशेष उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित हैं ।

सभी देवों में सामान्य रूप में ये विशेषताएँ पायी जाती है तेज, दया, हितकारिता, पवित्रता, परोपकारिता, वैदुष्य आदि । प्रत्येक देव में अपनी कुछ विशेषताएं होती है, जिनके आधार पर उनको एक दूसरे से पृथक् किया जाता है।

ऋग्वेद के देवताओं के विषय में यह ज्ञात है कि इनमें से प्रमुख सभी देव प्राकृतिक वस्तुओं के मूर्त रूप हैं। ये प्राकृतिक वस्तुओं के द्योतक है और इनका व्यक्ति के रूप में वर्णन है। यथा भौतिक अग्नि को अग्निदेव, प्रचण्ड वायु को मरुत् देवता, प्रातः कालीन उषा को उषा देवी ।

युगल देवों में देखने में आता है कि विशेषण- विपर्यय भी हो जाता है। जैसे-इन्द्र के साथ मरुद्गण का है। ऋग्वेद में यदि एक ओर

अनेक देवतावाद का समर्थन मिलता है तो दूसरी ओर एकेश्वरवाद का भी प्रबल समर्थन मिलता है। वेद में सर्वत्र आशावाद का संचार हैं। सभी देव आयुष, अभ्युदय और समृद्धि के दाता है। देवों का चरित्र बहुत उच्च चित्रित किया गया है। वे सत्यनिष्ठ, निष्कपट, धर्मपरायण और न्यायप्रिय है।

पिता-पुत्र सम्बन्ध के वर्णन से देवों के शरीर की भी कल्पना की गयी है और उनके अंग-प्रत्यंगों का वर्णन है। जैसे-अग्नि के ज्वालापुंज को उसका शरीर और लपलपाती लपटों को उसकी जिह्वा माना गया है। इसी तरह के तथ्य मरुद्गण के विषय में भी है।

मैकडोनेल का मानना है कि- "ऋग्वेद में न कहीं देवताओं की प्रतिमा का वर्णन है और न कहीं मन्दिरों का उल्लेख है"।[1]

पाश्चात्य विद्धानों ने वैदिक देवों और देवियों का जो चित्रण किया है, उसमें कहीं-कहीं पर उन्होंने शब्दों के गूढ़ार्थ एवं वास्तविक अर्थ को न लेकर केवल शब्दार्थ मात्र करने से अर्थ का अनर्थ भी कर दिया है और कहीं-कहीं पर उनका स्वरूप अत्यन्त निम्न कर दिया है।

---

1 स0सा0 इति0 भाग । (हिन्दी) पृष्ठ 60 ।

इस विषय में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं आलोचक डॉ0 भीखनलाल आत्रेय ने वैदिक माइथोलॉजी (हिन्दी अनुवाद) के प्राक्कथन में कुछ चेतावनी के शब्द कहे है; वे मानने योग्य हैः-

"वे इसे पढ़कर ऐसा न समझ बैठे कि वैदिक धर्म और दर्शन का स्वरूप इतना ही है जो इस पुस्तक में व्यक्त किया गया है। वेद के सम्बन्ध में आज का आलोचनात्मक ज्ञान बहुमुखी और अत्यन्त विस्तृत है। वेदों का अध्ययन करने वाले विद्धानों के अनेक सम्प्रदाय हैं, जिनमें से दो-तीन भारतीय विद्धानों के सम्प्रदाय ऐसे है जो प्रस्तुत ग्रन्थ की स्थापनाओं के सर्वथा विरूद्ध है और जिनका अध्ययन तथा मनन भारतीयों के लिए जो कि सदा से वेदों को अपने धर्म और दर्शन के चरम और पूर्ण ज्ञान का भण्डार मानते आ रहे हैं, अत्यन्त आवश्यक है। इन मतों का प्रतिपादन आधुनिक काल में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री मधुसूदन ओझा तथा अरविन्द घोष अपने उत्कृष्ट ग्रन्थों में किया है। सच्चे जिज्ञासुओं को सभी मतों को जानकर उनका तुलानात्मक अध्ययन करना और उसके बाद ही अपना निर्णय करना चाहिए।[1]

---

1. चौखम्बा प्रकाशन विद्याभवन वाराणसी ।

वैदिक देवताओं को याज्ञिक एवं अयाज्ञिक देवता के आधार पर भी वर्गीकरण किया जाता है। मूर्तिकरण का वह स्तर जिसका विभिन्न देव प्रतिनिधित्व करते है, वर्गीकरण का एक सम्भव आधार प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु इसके अनुसार भी स्पष्ट विभाजन रेखा खीचने का कार्य अनेक कठिनाईयों से युक्त हैं।

सम्पूर्ण रूप से देखने पर वैदिक देवों के उसी वर्गीकरण में न्यूनतम आपत्ति हो सकती है जो उन्हीं प्राकृतिक आधारों पर किया गया हो जिनका यह देव प्रतिनिधित्व करते हैं। अथर्ववेद तथा यजुर्वेद में भी इस विभाजन की पुष्टि मिलती है यथा-

त्रयत्रिंशता स्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः

परमेष्ठयाधिपतिरासीत् ।।[1]

किसी भी देवता की आधारभूत प्राकृतिक वास्तविकता क्या है? इसी आधार पर उसका स्थान भी निर्धारित होता है। यद्यपि इस कारण इस

---

1. यजु0 14-3 ।

देव का एक दोषपूर्ण स्थान पर वर्णन कर दिये जाने की भी आंशका हो सकती है। तथापि यह विधि सजातीय चारित्रिक विशेषताओं वाले देवों को एक साथ एकत्रित रखकर उसका त्रिपदीय विभाजन के अनुसार मरुदगण् और अन्य देव का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद के प्राचीनतर भाष्यकर ने भी इसी का अनुसरण किया है।

# तृतीय अध्याय

# वैदिक संहिताओं में मरुद्गण का स्वरूप तथा अन्य देवताओं से संबंध

# वैदिक संहिताओं में मरुद्गण का स्वरूप तथा अन्य देवताओं से सम्बन्ध

मरुद्गण के स्वरूप-विकास को समझने तथा उनके वैदिक देवों के बीच बढ़ते-घटते महत्त्व के संदर्भ में, विभिन्न देवों के साथ मरुद्गण के सम्बन्ध पर विचार किया जा रहा है। मरुद्गण की चर्चा मुख्यतः रूद्र, अग्नि, इन्द्र, वायु के साथ हुयी है। चित्र आप्तय के साथ कुछ संदर्भ प्राप्त हैं। सभी देवगण के सामूहिक रूप की जो कल्पना 'विश्वेदेवाः' नाम से हुयी, उसमें भी मरुद्गण को स्थान मिला ।

वैदिक संहिताओं में मरुद्गण के स्वरूप सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं का उल्लेख किया गया है। मरुद्गण के साथ अन्य देवताओं के सम्बन्धों का विवेचन भी प्राप्त होता है।

मरुत्-देवता की जो विशेषता सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करती है, वह यह है कि देवतावाची मरुत् शब्द का प्रयोग सर्वत्र बहुवचन में किया गया है।[1] स्पष्ट है कि इनकी कल्पना समूह-देवता के रूप में की गयी है। इनके समूह के लिए प्रायः गण[2] व्राते[3] अथवा यज्ञ[4] शब्द का प्रयोग किया गया है। कुछ स्थलों पर इनके समूह के लिये ग्राम शब्द भी प्रयुक्त हुआ

---

1 वैदिकपदानुक्रमकोश (सम्पा० विश्ववन्धु शास्त्री), में मरूद् शीर्षक के अन्तर्गत सभी प्रविष्टिया बहुवचन में हैं।

2 ऋ०स० I 38/15, 87/4, III. 36/6, V 52/13, VII 58/1, 94/12, अथ० सं० VII 82/1, तै०स० IV 7/12 ।

3. ऋ०स० I 85/4, III 26/6, 53/11 ।

4 I. 37/1, 4, 5, 64/1, II 30/11, V 52/8, 53/10, X. 103/9 ।

है, जैसे अरिष्ट ग्रामा: (166/6) अखण्डित अथवा अक्षत समूह वाले (मरुत्) तथा किन्हीं स्थलों पर मरुतो विश: (V. 56/1) आदि की भी चर्चा की गयी है। मरुतों को वृषव्रातम्स: (I. 85/4) शक्तिशाली समूह वाले वृषगण: ( I 87/4) शक्तिसम्पन्न समूह तथा युवागण: ( I 87/4) यौवन-सम्पन्न समूह कहा गया है। मरुतों के समूह के लिये सुमारुतम्[1] शब्द का प्रयोग भी हुआ है और मरुतों को गणत्रिग:[2] कहा गया है।

मरुतों के इस समूह में इनकी संख्या के विषय में ऋक्संहिता, अथर्व संहिता तथा यजुर्वेद की संहिताओं (कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं के मन्त्र-भाग) में कोई निश्चयात्मक कथन उपलब्ध नहीं होता। अपितु इनके बहुवाची शब्द के कहीं-कहीं बहुवचन में प्रयोग से, जैसे मह: शधासि (ऋ0सं0 V. 87/7) अथवा मरुतागणा: (अथ0सं0 13/4) तथा इसके अभ्यास से, जैसे व्रातं-व्रातं गणं-गणंसुशरितमिरग्नेभयिं मरुता मोजहमहे (ऋ0सं0 III 26/6) अथवा शर्धे-शर्धे व एवांप्रति ब्रातं-ब्रातं गणङ्गणं सुशस्ति:। अनुक्रमंम धीतिभि: । (ऋ0सं0 V 53/11) इससे तो यही धारण बनती है कि ऋषियों की दृष्टि में मरुतों की संख्या गणनातीत है। यह धारणा ऋषि के इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि मरुद्गण जल-तरंगों के समान सहस्रों अर्थात् असंख्य है। (सास्रियासों अपांनोनंय: ऋ0सं0 I.168/2) एक स्थल पर (ऋ0सं0 V 57/17) इनके सात गुना सात (सप्त में सप्त शाकिन

1 ऋ0स0 X. 77/1, 2 ।

2 ऋ0स0 I. 64/9, V. 60/8, VIII 23/4 ।

एकमैक शता ददु:) होने की बात कही गयी है, यहां ऋषि का उद्देश्य इनकी संख्या का निर्धारण नहीं अपितु इनकी अत्यधिक सख्या की ओर संकेत करना ही है, जिससे कि मरुतों से प्राप्त हुये उपहारों की विपुलता का ज्ञान कराया जा सकें। इसी प्रकार ऋ0स0 VIII 96/8 में इनकी संख्या तीन गुना सात कहीं गयी है। (त्रिषष्ठिस्त्वा मरुतों वावृधाना उस्रा इव राशयों यशियास:)। परन्तु यहाँ उस्रा एवं राशयों: कह देने से ऋषि को इनकी अत्यधिक संख्या ही अभिप्रेत जान पड़ती है।[1] ऋ0सं0 I 136/6 में इन्द्र को तीन गुना सात तत्वों के साथ (त्रिसप्तेः शुर सत्वभि:) से मरुद्गण को दिखाया गया है। यह बात अर्थ0सं0 13/1/3 में त्रिसप्तासो मरुत: इस कथन से पुष्ट हो जाती है। मरुतों की संख्या के सम्बन्ध में इस वैविध्य से यही प्रतीत होता है कि ऋषि इनकी संख्या की अत्यधिकता ही द्योतित करना चाहते हैं।

मरुद्गण के इस संघ का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें सब पूर्णतः समान हैं। मरुद्गण समान वयस्, समान शक्ति वाले, समान यश वाले (सवयसः समीला समान्या मरुतः ऋ0सं0 I 165/1) हैं। ये समान मन वाले बताये गये हैं[2] ये मरुद्गण साथ-साथ उत्पन्न हुए, साथ-साथ बड़े (सार्क

---

1 इस प्रसग में ऋ0स0 V. 56/5 तुलनीय है- जहा मरूतों के समूह को गायों के झुड के समान कहा गया है।

2 ऋ0स0 I 168/1 ।

जाता सुम्बः साकमुदिताः ऋ0सं0 V. 55/3)। इसलिए समान जन्मा होने के कारण मरुद्गण समान बन्धु है। (सजात्येन मरुतः सबन्धवः ऋ0सं0 VIII. 20/21) और जुड़वा (बच्चों) के समान सुन्दर (ऋ0स0 V. 57/4) है। इनमें न कोई किसी से बड़ा है (अज्येष्ठाः ऋ0स0 V. 59/6) अथवा अज्येष्ठासः (ऋ0सं0 V. 60/5) न कोई किसी से छोटा है। और न कोई किसी बड़े-छोटे के बीच में (अमध्यमासः ऋ0स0 V. 59/6) है। इनके आभूषण समान है। (समानमज्जेषाम ऋ0सं0 VIII. 20/11) तथा ये एक साथ ही प्रयत्नशील होते है (सरभसः ऋ0सं0 V. 54/10) और इनमें आपस में कभी संघर्ष नहीं होता (नकिष्टनुषु येतिरे ऋ0सं0 VIII. 20/12) । अतः मरुतों की उपमा रथ-चक्र के अरो से दी गयी है। अरों के समान इनमें कोई अन्तिम नहीं है। (अरा इवेद चरमा ऋ0सं0 V. 58/5, अराणां न चमस्तवेषाम् ऋ0सं0 VIII. 20/14) । जिस प्रकार रथ-चक्र की नाभि में सभी अरे समान भाव से जुड़े होते हैं, इसी प्रकार का इनका संघ है। (रथानां न येराः सनाभयः ऋ0सं0 X. 78/4) । इनकी समानता द्योतित करने के लिए एक स्थल पर इनकी उपमा दिनों से भी दी गयी है। जैसे एक के बाद एक दिन चढ़ता है और काल-चक्र में ये दिन समान रूप से गतिशील होते हैं, इसी प्रकार ये मरुद्गण है। (अहैव प्रजायन्ते ऋ0सं0 V.58/5)।

वैदिक संहिताओं में मरुतों के जन्म, माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि की कल्पना की गयी है। मरुतों को रुद्र का पुत्र कहा गया है और इस अर्थ में रुद्रस्य सुनवा:[1] रुद्रस्य भर्या:[2], रुद्रस्य पुत्रा:[3], रुद्रियास:[4], रुद्रिया:[5] रुदास:[6] रुद्रा:[7] अथवा किन्हीं स्थलों पर केवल रुद्रस्य[8] शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनकी माता का नाम पृश्नि अथवा पृश्निगो: बताया गया है। और इसलिये इनको पृश्नै: पुत्रा[9], पृश्निमातर:[10] पृश्निगर्भा:[11] अथवा गोमातर:[12] कहा गया है। एक बार इनको गोबन्धव:[13] भी कहा गया है। ऋषि गृत्समद् की धारणा है कि रुद्र ने पृश्नि के ऊधस थनों से मरुतों को उत्पन्न किया है।[14] ऋषि आत्रेय ने नाटकीय ढंग से मरुतों के माता-पिता

---

1 ऋ0स0 I. 64/12, 85/1, VI. 66/11, VIII. 20/17 ।

2 ऋ0स0 I. 64/12, VII 56/1 ।

3 ऋ0स0 VI 66/3 ।

4. ऋ0सं0 I. 38/7, V. 57/7, 58/7, VII. 56/22 ।

5 ऋ0स0 II. 34/10, III 26/5, VIII 20/3 ।

6 ऋ0स0 I 39/4, 85/2, 57/1, 87/7, VIII 20/2 ।

7 ऋ0सं0 39/7, II 34/9, V. 60/6, VIII. 7/12 । ।

8. ऋ0स0 V. 59/8, VII. 85/5 ।

9 ऋ0स0 I. 38/4, 85/1, 89/7, V 57/2, 3, VIII. 7/3, 17 ।

10. ऋ0स0 IV. 27/12, V. 21/11, VIII. 1/3 ।

11. ऋ0सं0 I. 123/1, तै0स0 I. 4/8/1, वा0स0 VII. 16 ।
सायण ने पृश्निगर्भी में पृश्नि का अर्थ आदित्य अथवा सूर्य की सतरगी रश्मियां किया है और पृश्निगर्भी: से जलों का अर्थ किया है। उव्वट तथा महीधर ने भी यही अर्थ ग्रहण किया है।

12. ऋ0स0 I. 85/3 ।

13. ऋ0स0 VIII. 20/8 ।

14. रूद्रा यवो मरूतों रूक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्या: शुक्र ऊधनि ऋ0सं0 II. 34/2 ।

की चर्चा इन शब्दों में की है- उन प्रभावयुक्त सूरियों मरुतों ने अपनी बन्धुता के विषय में पूछे जाने पर मुझे यह बताया कि पृश्नि इनकी माता है और शक्तिशाली रुद्र उनके पिता है।[1] इसीलिये सुजात (सुजातास:[2] अथवा सुजाता:[3]) कल्याणी माता वाले (भद्रजानय:[4]) सुन्दर माता वाले (सुमातर:[5]) कहे गये हैं। पृश्नि ने उनको महान् युद्ध के लिये जन्म दिया।[6]

मरुतों को रुद्र का पुत्र क्यों कहा गया है, कारण रुद्र और मरुतों के पिता-पुत्र सम्बन्ध की कल्पना इनके स्वरूप के विशिष्ट साम्यों के आधार पर हुयी होगी । यास्क ने (निरु० 10/39) पृश्निगर्भा: का अर्थ प्राष्ह्वर्णगर्भा: अर्थात् विविधवर्णवाले (संभवत: मेघ) के गर्भ में स्थित किया है। पृश्नि शब्द का यह अर्थ ग्रीक कृष्णवर्ण से भी समर्थित होता है। गो: शब्द का प्रयोग मेघ के लिए भी किया गया है। इस मेघ रूपी गाय का दूध वृष्टि के रूप में प्रकट होता है।[7] अत: पृश्निगों अर्थात् शवलवर्णा गाय से अर्थ प्रर्मजन-मेध ही हो सकता है, जो शवलवर्ण होता है। अत: पृश्निमातर: अथवा गोमातर: जैसे विशेषणों से ऋषि का अभिप्राय मरुतों का सम्बन्ध झंझावात से जोड़ना प्रतीत होता है।

---

1. ऋ०स० V 52/16 ।
2. ऋ०स० V. 57/5, 59/6, VII 20/8 ।
3 ऋ०स० I. 88/3, 166/12 ।
4. ऋ०सं० V. 61/4 ।
5 ऋ०सं० X. 78/6 ।
6. असूत पृश्निर्महते रणाय ऋ०स० I. 168/3 ।
7. उदाहरणार्थ मरूतों के लिये कहा गया है कि वे दिव्यथनों को दुहते है और भूमि को जल से सींचते है, ये दिव्य थन पृश्नि (मेघ) के थन ही है।

मरुतों के माता-पिता के सम्बन्ध में उपर्युक्त बहुचर्चित उल्लेखों के अतिरिक्त छुटपुट रूप में मरुतों को वाणी के पुत्र (सुनवो गिरः[1] 37/10) द्युलोक के पुत्र ऊँचाई की सतान (प्रवतोनपाते[2] अथर्व0 26/3) तथा माता सिन्धु के पुत्र (सिन्धुमातरः[3]) भी कहा गया है। ये कथन वस्तुतः इनके गायक, दिव्य, उन्नत तथा नदियों से सम्बद्ध रूप को ही स्पष्ट करते है। इसी प्रकार ऋषि गृत्समद ने इनको भरत अर्थात् अग्नि के पुत्र (भरतस्य[4] सुनवः ऋ0सं0 36/2) कहकर इनके अग्नि के समान देदीप्यमान रूप को ही प्रकाशित किया है।

परन्तु ऋषि गौतम की दृष्टि में मरुद्गण किसी अन्य से नहीं अपितु स्वयं अपने से साथ-साथ उत्पन्न हुये (सार्कणाशिरे स्वयधा दियो नरः ऋ0सं0 I. 64) और इसका समर्थन ऋषि अगस्त्य ने इनको अपने से ही उत्पन्न (स्वजाः ऋ0सं0 I. 168) कहकर कराते हैं। कुछ इसी प्रकार का भाव ऋषि मधुच्छन्दा ने भी इन्द्र के साथ वर्णन करते हुए इन शब्दों में प्रकट किया है।-अप्रकाश में प्रकाश तथा अरुप में रूप को प्रकट करते हुये, हे नरों! तुम उषार्थ के साथ उत्पन्न हुये। तदनन्तर अपने स्वभावानुरूप

---

1 सायण ने सुनवो गिरः का अर्थ वाचः उत्पादकाः अर्थात वाणी से उत्पन्न होने वाले किया है।

2 नपात् शब्द का अर्थ सन्तति, पुत्र है ।

3 यहा सिन्धु से सिन्धु नदी का अर्थ भी सभव है और तब सिन्धुमातरः से मरूतों का सिन्धु नदी के समीपस्थ प्रदेश से सम्बन्ध सकेतित होता है। मैक्समूलर ।

4. विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ में वेंकटमाधव ने भरतस्य सुनवः का अर्थ आदित्यस्य सुनवः है तथा सायण ने रूदस्य पुत्राः अर्थ दिया है ।

यज्ञिय नाम धारण कर पुनः गर्भत्व को प्राप्त हुये।[1] ऋषि वशिष्ठ ने इनको रुद्र के पुत्र (रुद्रस्य मर्याः) कहकर भी इनके जन्म की अपरिज्ञेयता इन शब्दों में स्पष्ट की है, "वस्तुतः इनके जन्म को कोई नहीं जानता, ये स्वयं ही एक दूसरे के जन्म-स्थान को जानते है।"[2] स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि की दृष्टि में मरुद्गण अजन्मा ही है, उनके माता-पिता की कल्पना तो केवल उनके विशिष्ट गुणों को प्रभावकारी ढंग से प्रकट करने का एक कवित्रमय अलंकारपूर्ण ढंग मात्र है।

मरुद्गण और रुद्र का सम्बन्ध निम्नलिखित साम्य के आधार पर है । रुद्र और मरुतों में सबसे बड़ा साम्य इनका स्वर्ण-वर्णत्व हैं। ये सूर्य या स्वर्ण के समान द्युतिमान् और भास्वर कहा गया है। रुद्र को निष्क के समान स्वर्णाभूषण से अलंकृत भी कहा गया है। (ऋ0सं0-II 33/10) । रुद्र को विद्युत से भी घनिष्ठ बताया गया है। मरुद्गण का भी सम्बन्ध स्वर्ण वर्णत्य से है। इनके लिए भी स्वर्णिम, दीप्तिमान तथा विद्युद्मय स्वरूप का प्रख्यापन किया गया है।

इस दीप्तियुक्त स्वरूप के कारण ही रुद्र और मरुतों को अग्नि से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध बताया गया है। अग्नि के साथ इनका तादात्म्य प्रदर्शित करते हुए ऋषि गृत्समद कहते है- "हे अग्नि तुम द्युलोक का महान् असुर रुद्र हो तुम मरुतों का समूह हो" (ऋ0सं0 II. 2/6) ।

---

1. केतु कृणवन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे। समुषदिभरजायथाः ऋ0स0 I. 6/3 ।
2 नकिहर्येषा जनूषि वेदते अंड्ग विद्रे मिथो जनित्रम् । ऋ0स0 VII. 56/2 ।

इससे यह स्पष्ट है कि अग्नि वर्ण होने के कारण रुद्र और मरुद्गण घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हुए और उनकी पिता-पुत्र के रूप में कल्पना की गयी ।

वैदिक संहिताओं में रुद्र तथा मरुद्गण का एक अन्य प्रमुख वैशिष्ट्य है- जलाष (ठंडक पहुँचाने वाला) भेषज (आरोग्यकारी) रूप का वर्णन । ऋषि गृत्समद रुद्र से प्रार्थना करते है कि हे रुद्र! तुम्हारे द्वारा प्रदत्त कल्याणतम भेषजों द्वारा मै सौ वर्षो का उपभोग करूँ (ऋ0सं. II. 33/2)। अथर्व संहिता में भी रुद्र के इस प्रमुख वैशिष्ट्य का उल्लेख है। (अथर्व0 सं0 II. 27/6)। ऋषि गृत्समद कहते है- हे मरुतों! हे शक्तिशालियों! आरोग्य प्रदान करने वाली भेषज रुद्र से चाहता हूँ । (ऋ0सं0 II. 33/13) इस मंत्र में भेषज्य गुण के कारण मरुद्गण और रुद्र का सम्बन्ध स्पष्ट होता है। इनका यह स्वभाव अन्य जगह भी वर्णित है।

मरुतों का यह भेषज्य रूप संभवतः उनकी दी हुयी वृष्टि द्वारा प्रकट होता है, जैसा कि ऋषि आत्रेय ने कहा है- हे मरुद्गण जब तुम प्रातः काल धन, जल और भेषज की वृष्टि करते हो तब हम तुम्हारे साथ हो (ऋ0सं0 V 53/14)। परन्तु यदि वृष्टि ही भेषज है तो रुद्र का वृष्टि के साथ सम्बन्ध बहुत स्पष्ट वर्णित नहीं हुआ है। उग्रता, भयंकरता, क्रोध और विनाशकारिता रुद्र के साथ प्रमुख रूप से सम्बद्ध रहे है। इसी प्रकार

ओजस्विता और उग्रता तो मरुद्गण के प्रधान गुण माने जाते है। पूरे वैदिक वाङ्मय में जहां कहीं भी प्रचण्ड वेग और भयंकरता का स्मरण किया गया है वहां मरुतों का स्मरण स्वतः हो जाता है। उनकी उग्रता क्रोध का रूप धारण कर क्रुद्ध सर्प से बन जाते है। (ऋ0सं0 I 64/8) । लेकिन यह भी स्मरणीय है कि मरुद्गण की भयंकरता रुद्र के अपेक्षा अत्यल्प ही है।

इन सब समानताओं के कारण मरुद्गण रुद्र से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध तथा अनुयायी बनें । मरुद्गण का बहुसंख्यकत्व तथा रुद्र का एकत्व इनके पिता-पुत्र कल्पना का आधार बना ।

मरुतों की सहचरी के रूप में ऋषियों ने सरस्वती, इन्द्राणी तथा रोदसी की चर्चा की है। ऋषि वशिष्ठ ने एक स्थल पर सरस्वती को मरुत्सखा (ऋ0सं0 VII 96/2) कहा है तथा एक अन्य प्रसंग में कहा है कि सरस्वती मरुतों को आनन्दित करें (सरस्वती मरुतों मादयन्ताम् ऋ0सं0 VII 39/5)। ऋक्संहिता में दशम मंडल के प्रसिद्ध वृषाकपि सूक्त की नौवीं ऋचा में इन्द्राणी स्वयं को मरुत्सखा कहती है (उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्यादिन्द्र उतरः)। परन्तु मरुतों का सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध रोदसी अर्थात् विद्युत के साथ बताया गया है। सम्बन्ध की इस घनिष्ठता का जिस प्रकार से वर्णन किया गया है उससे प्रतीत होता है कि ऋषियों ने रोदसी की मरुतों को पत्नी के रूप में कल्पना की है। ऋषि अगस्त्य मरुतों की इस घनिष्ठ सहचरी की ओर प्रथमतः इन शब्दों में संकेत करते

हैं- जिन (मरुतों) से सुंदर, ओजस्विनी (घृताची), स्वर्णवर्णा (विद्युत्) पीछे लटके भाले के समान (उपरा न ऋष्टि:),[1] प्रच्छन्न रूप से साथ चलती (गुहा चरन्सी) मनुष्य की पत्नी के समान, सभा में प्रयुक्त होने वाली (विदथ्या) प्रकाशवती वाणी के समान संश्लिष्ट हैं।[2] ऋषि श्यावाश्व आत्रेय की दृष्टि में रोदसी मरुतों के रथ पर आरुढ़ होती है।[3] ऋषि भारद्वाज वार्हस्पत्य ने भी रोदसी को मरुतों के बीच प्रकाश के समान स्थित बताया है।[4]

यजुर्वेद की संहिताओं में एक स्थान पर मरुतों के एक पुत्र ऊर्ध्वनमस् का उल्लेख हुआ है। ऊर्ध्वनमस् से ऋषि को क्या अभिप्रेत है यह स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि इसका उल्लेख केवल एक बार ही हुआ है।

अथर्ववेद-संहिता में मघुकेशा को मरुतों की पुत्री कहा है।[5] इस के वर्णन से विदित होता है कि मघुकेशा की कल्पना वृष्टि के अपर पर्याप के रूप में की गयी है।[6]

---

1 ऋ0स0 । 167/3 ।

2. ऋ0सं0 । 167/4 । परा शुभ्रा अयासो यष्या साधारण्येव मरूतों मिमिशुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ।।

3 ऋ0स0 ।। 56/9 ।

4 ऋ0स0 ।। 66/6 ।

5. अथ0 1/3, 10 ।

6. ऋ0स0 । 22/3 में अश्विनी की मधुमति कथा की चर्चा है, जिसके अन्तर्गत यह भाषित होता है।

मरुद्गण ऊंचे कद वाले (ऋष्वासः अथवा ऋष्वा[1]) है। इसीलिये इनको ऊँचाई की संतान कहा गया है। ये उतुंग है,[2] मरुदगण चिर युवा है। (युवा स मारुता गणः ऋ0सं0 V 61/13), अतः सदैव नया-नया सा प्रतीत होता है (गणं मारुतं नव्यसीनाम् ऋ0सं0 V 53/10) । ऋषिगण मरुतों को युवानः[3] अथवा युनः[4] विशेषण के साथ स्मरण करते है। मरुतों से बुढ़ापा हमेशा दूर रहता है, ये अजराः है। इसीलिये ये अमृत भी है और इन्होनें अमरनाम पाया है।

शाश्वत यौवन-सम्पन्न मरुद्गण स्वभावतः देदीप्यमान है। ये अपने प्रकाश से जगमगाते (स्वभावनवः[5] स्वरोचिषः स्वकांः है। ये सुन्दर द्युतियुक्त चित्र मानव[6] है और ऋषि अगस्त्य की दृष्टि में तो अहि संदृश दीप्त (अहिमानवः)[7] है। अहि से यहाँ मेघ का ही अर्थ होगा और मेघ की दीप्ति विद्युत ही है। अतः ये विद्युतप्रभा-सम्पन्न है। इसी प्रकार की उपमा ऋषि गृत्समद ने भी इनको विद्युतों के समान चमकते हुये (व्यभ्रिया[8] न द्युतयन्तः ऋ0सं0 I 34/2) कहकर दी है। अतः ये (शुभ्राः[9] अथवा

---

1 ऋ0स0 I 64/2, V 52/6-13 ।
2. ऋ0सं0 III 26/4 ।
3. ऋ0स0 I 64/3 ।
4. ऋ0सं0 VIII 20/19 ।
5 ऋ0सं0 I 37/2, I 87/5, I 24/1 ।
6 ऋ0स0 I 64/7, 85/11 ।
7 ऋ0स0 I 172/1 ।
8 सायण ने व्यभ्रिया का अर्थ अभ्रषु भवा विद्युत किया है जो धुतयन्तः के साथ ठीक लगता है।
9. ऋ0सं0 I 19/5, 85/3, 167/4 ।

शुभ्रास:[1]) हैं और तारों भरे आकाश के समान दूर से ही दिखाई देते हैं (दुरे दृशों ये दिव्या इव स्तृभिः ऋ0सं0 । 166/11)। ये स्वर्ण वर्ण हैं।[2] और पिशा नामक मृग के समान सुवर्ण (पिशा इव सुपिशेः विश्ववेदसः I. 164/8) हैं। ये अरुण-वर्ण (अरुणप्सव:)[3] है और गृह-स्थित नव-जात शिशुओं सें शुभ्र हैं। (हर्म्येष्ठाः शिशवों न शुभ्राः ऋ0 VII 56/16)। इनके रूप इतने दैदीप्यमान हैं कि लोग कह उठते है कि देखों, इन पारावतों (परदेशियों) को देखों ये राजाओं से भी सुन्दर और सुदर्शन हैं (राजानों न चित्राः सुसन्दृशः ऋ0सं0 X 78/1) ।

मरुद्गण अग्नियों जैसे दैदीप्यमान हैं। ये उज्जवलित अग्नियों जैसे युतिमान् हैं, यज्ञाग्नि की लपटों जैसे धधकते और अग्नि की जिह्वा जैसे लपलपाते हैं। (त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् तृषच्यवसो जुह्वो नाग्नेः VI 66/10)। अपनी दीप्ति से ये अग्नि की जिह्वाओं जैसे हैं। (अग्नीनां न जिह्वा विरोकणः X 78/3)। ये अग्नि की सी शोभा वाले (अग्निश्रिया:[4] अथवा अग्निभ्राजस:[5]) हैं। प्रतीत होता है कि इनका जन्म ही लपटों अथवा दीप्ति से हुआ है (भ्राजज्जन्मान:, शुचिजन्मान:) ।

इस प्रकार से मरुद्गण के सम्बन्ध में यह तादात्म्य केवल सामान्य प्रकार का ही नहीं है अपितु मरुद्गण को जन्म देने का श्रेय अग्नि

---

1 ऋ0स0 II 36/2 ।
2. ऋ0स0 V 54/11 ।
3. ऋ0स0 VIII 7/7 ।
4. ऋ0स0 III 26/5 ।
5 ऋ0सं0 V 54/11 ।

को भी दिया गया है। ऋषि पराशर के शब्दों में अग्नि ने (मरुद्गण के) अनवध युवक तथा शक्तिसम्पन्न दल को जन्म दिया और प्रेरित किया ('अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च' ऋ0 I 78/8) । ऋषि भारद्वाज के शब्दों में भी अग्नि ने मरुतों के दल को गढ़ा शर्धो वा यो मरुतां तस्क्ष ऋ0 VI 3/8 ।

अग्नि के साथ मरुतों के इस जनकजनित सम्बन्ध से उनकी पारस्परिक घनिष्ठता स्पष्ट होती है। वैदिक संहिता में अनेक स्थलों पर अग्नि और मरुद्गण का एक साथ आह्वान ओर स्तवन किया गया है। समस्त वर्णनों में मरुद्गण का दीप्तियुक्त प्रकाशमय रूप सामने आता है और यही अग्नि के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण प्रतीत होता है। पंचम मंडल के साठवें सूक्त में भी अग्नि के साथ-साथ मरुतों का स्तवन किया गया है और अग्नि को मरुद्गण के साथ आकर सोमपान करने का आहवान किया गया है। मरुद्गण तथा अग्नि से धन आदि की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गयी है। कई ऋचाओं में मरुतों को अग्नयः अग्नित्रियः कहा गया है। ऋषि विश्वमित्र की दृष्टि में भी अग्नि-मरुतों का परस्पर अवियोज्य सम्बन्ध है।

अग्नि के साथ मरुतों की घनिष्ठता का कारण बहुत ही स्पष्ट है। इसके अन्वेषण के पश्चात् यह तथ्य सामने आया है कि इसका कारण मरुद्गण का प्रकाश, दीप्ति और विशेषतः विद्युत से सम्बद्ध होना है। समस्त मरुत् सूक्तों में यह विशेषता पदे-पदे प्रदर्शित की गयी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मरुतों के लिए अग्नयः अग्निश्रियः, शुचयः, शुभ्राः,

चित्रमानवः, स्वमानवः, स्वर्णाः, शुशुचानः, हिरण्ययाः, भ्राजनन्मानः, शुचिजन्मानः, सूर्यत्वचः, अभियवः इत्यादि विशेषणों को भरमार उनके दीप्तियुक्त पक्ष को प्रमुख लक्षण सिद्ध करते हैं। सोमयाग में तृतीय सवन का अन्तिम सत्र अग्निमारुत का होता है। इसमें मुख्यतः अग्नि और मरुद्गण स्तुत है। यह भी अग्नि के साथ मरुतों के निकट साहचर्य का परिचायक है। अग्नि के साथ मरुतों का घनिष्ठ सम्बन्ध सम्पूर्ण वैदिक संहिता में प्राप्त होता है और जैसे रुद्र के साथ मरुद्गण का सम्बन्ध आगे चलकर धूमिल सा हो गया, ऐसा अग्नि-मरुद्गण सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता। मरुद्गण के स्वरूप को सम्यक् रूप से समझने के लिए अग्नि के साथ उनके सम्बन्ध से बहुत उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है।

मरुतों की दीप्ति की उपमा सूर्य से भी दी गयी है। वे सूर्य के सदृश प्रभावान् हैं (शुचया सूर्या इवे ऋ0सं. I 64/2)। वे सूर्य के नर (स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ऋ0सं0 V 54/10) है और सूर्य की रश्मियों के समान प्रभा-युक्त हैं (विरोकिणः सूर्य येव रश्मयः ऋ0सं0 V 55/3)। वे सूर्य-सदृश देदीप्यमान त्वचा वाले (सूर्यत्वचः अथवा सूर्यत्वचसः[1]) हैं।

मरुद्गण उज्वल-वर्ण (नन्द्रवर्णाः ऋ0सं0 I 165/12) हैं। इन्होंने दीप्तियुक्त उज्ज्वल वर्ण धारण किया है। उन्होंने सौन्दर्य को धारण किया है। (त्रियो दधिरे I 85/2)। ऋषि श्यावरण आत्रेय की दृष्टि में सौन्दर्य अपनी समग्रता के साथ इनके अंगों में विराजमान (विश्वा वः श्रीरधितनुषु

---

1 ऋ0स0 26/3 ।

पिपिशे ऋ0 V 57/6) । ऋषि वसिष्ठ के शब्दों में मरुद्गण शोभा से सर्वाधिक शोभित तथा सौन्दर्य से सने हैं (शुभ्र शोभिष्ठाः श्रिया समिश्लाः ओजोभरुग्राः ऋ0 VII 56/6) ।

वैदिक ऋषियों ने अन्य देवों के समान मरुद्गण को भी यदा-कदा बौद्धिक तथा मानसिक गुणों से भी मण्डित किया है। ये धीर है, मनीषी (मनीषिणः ऋ0सं0 V 57/2) है तथा मनीषा से दीप्त (शुचयों मनीषां ऋ0सं0 VI 66/11) है । ये बुद्धिमान है। मरुद्गण ऋत् से उत्पन्न (ऋत जाताः ऋ0सं0 V 61/14) है और इसलिये ऋत को जानने वाले (ऋतज्ञाः)[1] है । ये कवि[2] हैं, पावक[3], है और इन दिव्य गुणों के कारण नेता (प्रणेतारः V 61/15) है।

वैदिक ऋषि मरुतों के देदीप्यमान स्वरूप से इतने अभिभूत हैं कि अग्नि अथवा सूर्य से उनकी उपमा देने पर भी मानों उनकी भासुरता अधूरी रह जाती है और इस कमी को पूरा करने के लिए वे मरुतों को नानाविध आभूषणों से अलंकृत कर देते हैं। ऋषि श्यावाश्व आत्रेय के शब्दों में समृद्धवरों के समान अपनी शक्ति से स्वर्णालंकारों से अपने शरीर सजाए है (वरा इवद रैवतासो हिरण्येरेभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ऋ0सं0 V 60/4) । ऋषि गौतम की दृष्टि में सर्पणशील मरुद्गण (मेले-ठेले में जाती हुयी) स्त्रियों के समान, हैं। एक अन्य सूक्त में ऋषि गौतम को आभूषणों

1. ऋ0स0 V 61/14 ।
2 ऋ0स0 V 52/13, 57/8, ।
3 ऋ0स0 I 64/2 ।

से सजे मरुद्‌गण तारों भरे आकाश से लगते हैं (अज्जिभिर्व्यानिश्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ऋ0सं0 I 87/1) । ऋषि अगस्य का कहना है कि जब ये मरुद्‌गण कहीं प्रस्थान करते हैं तो शरीर को अलकृत कर (तत्वः शुम्भमानाः ऋ0सं0 I 165/5) चलते हैं । ऋषि गृत्समद ने भी इनको आभूषण-प्रिय कहा है। ऋषि श्यावाश्व आत्रेय इनको आभूषण वाले कहते हैं। ऋषि वशिष्ठ इन्हें अलंकृत नर (व्याक्ताः नरः ऋ0सं0 VII 56/2) के रूप में याद करते हैं और उन्हें ये अलंकृत मर्द (मरुद्‌गण) यक्ष जैसे दिखाई देते हैं (यझदृशो न शुभयन्त मर्याः ऋ0सं0 VII 56/16 तथा एक अन्य सूक्त में उन्हें ये सजे-सजाये मरुद्‌गण नीलपृष्ठ हंसों जैसे प्रतीत हुये (सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन्‌ ऋ0सं0 VII 59/7)। ऋषि भार्गव को आभूषणों से सजे मरुद्‌गण शोभा-यात्रा में चलने वाले लोगों जैसे लगते है। ऋषि कण्व के शब्दों में तो इनके ये आभूषण कर्ण के कवच-कुण्डल के समाज जन्मजात हैं। सार्क वाशीभिराज्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः (ऋ0सं0 I 37/2) ।

मरुतों के विविध आभूषणों का भी ऋषियों ने उल्लेख किया हैं। ये सुन्दर कड़ों वाले, मजबूत कड़ों वाले अथवा शुभ्र कड़ों वाले (शुभ्रखादयः ऋ0सं0 VIII 20/4) कहा गया है। कड़ों को ये हाथों (कलाइयों) में धारण करते हैं। (आदिहस्तम्‌ (गणम्‌) ऋ0सं0 V 58/2), पैरों में भी पहनते हैं (पत्सुखादयः ऋ0सं0 V 54/11) तथा कन्धों पर भी लटका लेते हैं ।

मरुतों का दूसरा आभूषण रुक्म में है। जिसका प्राय: बहुवचन में प्रयोग हुआ है।[1] इसलिए इनको रूक्म से शोभित वक्ष स्थल वाले कहा गया है। रूक्मों को ये वक्ष स्थल पर धारण करते हैं (वक्ष:सु रूक्मान्) परन्तु एक स्थल पर यह भी कहा गया है कि रूक्म इनकी भुजाओं पर शोंभित हैं (विभ्राजन्ते रूक्मासों अधि वाह्युष ऋ0सं0 VIII 20/11) सायण ने रूकम का अर्थ धार किया है। निघण्टु में रूक्म को हिरण्य के पर्यायों में गिन गया है। आश्वलायन-श्रोत सूत्र के अनुसार यह गोल आकार का आभूषण है, जिसे होता को दिया जाता है।

एक स्थल पर मरुतों को सुन्दर निष्क धारण करने वाला भी कहा गया है (सुनिष्का उक्त स्वयं तन्व: शुम्भमाना: ऋ0सं0 VII 56/11)। निष्क भी एक प्रकार के गहने हैं। एक अन्य स्थल पर (ऋ0सं0 V 53/4) मरुतों को मालाओं से अलंकृत बताया गया है।

मरुद्गण सिर पर सोने के मुकुटधारण करते हैं और इसलिये इनको स्वर्णमुकुट वाले (रिण्याशिप्रा:[2] ऋ0सं0 I. 4/1, 8) कहा गया है।

ऋषि आत्रेय ने मरुतों को वस्त्रों से भी भूषित किया है। एक स्थल पर वे कहते हैं कि देदीप्यमान मरुद्गण परुष्णी पर ऊनी वस्त्र धारण किये हैं । एक अन्य स्थल पर वे इनके सुनहरे वस्त्रों की चर्चा करते हैं

---

1 ऋ0स0 I 64/4 ।

2 शिप्र शब्द के अर्थ के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। परन्तु यहाँ इसका अर्थ शिर पर धारण किये हुए किसी अलकार का या मुकुट का ही अर्थ समर्थित होता है।

(हिरण्यमान् प्रत्यत्कां असुग्ध्वम् ऋ0सं0 V 55/6) । स्पष्ट है कि मरुतों की हिरण्मयी दीप्ति ही यहां ऋषि की दृष्टि में उनके सुनहरे वस्त्र है। एक अन्य स्थल पर वर्षा को ही मरुतों के वस्त्रों के रूप में देखते हैं और इनको वर्षा के वस्त्र वाले विशेषण से मण्डित करते हैं। ऋषि अगस्त्य के अनुसार मरुद्गण कन्धों पर शवल वर्ण मृगचर्म (असेष्वेतो:[1] ऋ0सं0 I.166/10) धारण करते हैं।

वैदिक ऋषियों ने मरुतों को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित योद्धाओं के रूप में देखा है । ऋषि वशिष्ठ के शब्दों में अपने रूक्मों, आयुधों और (वलिष्ठ) अंगों से जैसे ये मरुद्गण प्रकाशित होते है, ऐसी अन्य कोई भी देवता नहीं (नैतावदन्ये मरुतो यथेमें भ्राजन्ते रूक्मैरायुधेस्तनूभि: ऋ0सं0 VII 57/3) है । ये आयुध इनके शरीर पर ही शोभित नहीं होते अपितु इनके रथों में भी रखे रहते हैं (नृम्णा शीर्षस्वायुधारथेूषु वो विश्वाव: श्रीरधि तनूणुपिपिशे ऋ0सं0 V 57/6) इनके रथों में तीक्ष्ण आयुध इतने भरे हैं कि आपस में टकराते हैं (विश्वानिभद्रा मरुतों रथेषु वो मिथस्पृप्येव तविषणयाहितां ऋ0सं0 I 166/9) । इसलिये मरुद्गणों को सुन्दर आयुध वाले (रवायुधास: ऋ0सं0 V 87/5) कहा गया है। इन आयुधों पर मरुतों का पूरा नियंत्रण है और ये स्वेच्छानुसार इनका प्रयोग करते हैं। (अनुस्वधामायुधेयंच्छमाना: ऋ0सं0 VII 56/13)।

---

1. सायण ने एत: का अर्थ शुक्लवर्णा किया है परन्तु रॉथ ने कुछ विशेष प्रकार के मृग-चर्म का अर्थ लिया है जो प्रस्तुत प्रसंग में अधिककवित्वमय प्रतीत होता है।

मरुद्गण के आयुधों में सर्वाधिक चर्चा इनकी ऋष्टियों (भालों) की हुयी है। ये शक्तिशाली मरुद्गण ऋष्टियों से प्रकाशित होते है। (वि ये भ्राजनते सुमखास ऋष्टिभिः[1] । ऋ0सं0 85/4) और इसलिये इनके लिये चमचमाते भालों वाले (भ्राजद्ऋष्टयः[2]) विशेषण प्रयुक्त हुआ है। ये भाले लेकर प्रयाण करते हैं । भालों को ये कन्धे पर टिकाए रहते है। (असेव्वेषांनिमिमिज्ञुऋष्टयः ऋ0सं0 । 64/4) और अपने रथों पर भी रखे रहते हैं। इसलिये इनके रथों के साथ ऋष्टिमत् विशेषण प्रायः लगाया गया है। (रथेभिर्यातऋष्टिमंद्भिः ऋ0सं0 । 88/1) जब ये मरुद्गण अपने भालों को आगे की ओर सन्नद्ध कर प्रयाण करते हैं तो यह दृश्य देखते ही बनता है (चित्रों वो यामः प्रयतास्वष्टिषु ऋ0सं0 । 166/4) ।

मरुतों को अनेक स्थलों पर विद्युत रूपी ऋष्टि वाले (ऋष्टिविद्युतः)[3] कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि ऋषियों ने विद्युत को ही इनकी ऋष्टि के रूप में कल्पना की है। पीछे कहा जा चुका है कि 'रोदसी' इनकी घनिष्ठ सहचरी है और यह विद्युत का ही अपर पर्याय है। एक स्थान इनसे संष्लिश्ट (संभवतः रोदसी) की अपना ऋष्टि से दी गयी है। प्रतीत होता है कि एषामंसेषु रम्भिणीव राश्भे (ऋ0सं0 । 168/3) में

---

1 सायण ऋष्टिभिः का अर्थ यहा पर आयुध. कर दिया है परन्तु इसके अवेस्ता प्रतिरूप अर्शनिश् का अर्थ भाला ही होता है इसलिए यहा पर यही अर्थ ग्रहण है।

2 ऋ0स0 III 34/5, VI 55/1, 78/7 ।

3 ऋ0स0 II 168/5, VI 52/13 आदि।

पत्नी के[1] समान इनके कन्धों से टिकी यह विद्युत् रूपिणी ऋष्टि ही है। एक स्थान पर विजलियों को इन्होंने मुट्ठियों में (विद्युतों गभस्त्योः ऋ0सं0 V 54/11) भी पकड़ा है।

विद्युत् की ही कल्पना इनके वज्र के रूप में भी की गयी है। ऋषि वशिष्ठ मरुतों से प्रार्थना करते है कि उनसे चाहे जो भी अपराध हो गया हो, वे अपना चमचमाता वज्र (विद्युत्) उनसे दूर ही रखें और उनके शत्रु को अपने प्रतप्त (तपिष्ठ) वज्र (हन्मत्) से मार डालें।[2] ऋषि अगस्त्य के शब्दों में मरुद्‌गण अपने वज्र से ठोस पदार्थो को भी भंगुर के समान तोड़ देते है।[3] ऋषि अगस्त्य भी मरुद्‌गणों से प्रार्थना करते है कि वे अपना वज्र (शरु अथवा अश्मा) उनसे दूर रखें ।[4] ऋषि काण्व ने मरुतों को वज्र (ऋ0सं0 VIII 7/32) कहा है।

मरुतों के एक अन्य आयुध वाशी का बहुधा उल्लेख हुआ है।[5] ये मरुद्‌गण वाशियों सहित उत्पन्न हुये (ये पृषतीभिऋष्टिभिः सार्क वासीभिरंजिभिः । अजायन्त स्वभानवः । ऋ0सं0 I 37/2) । सायण ने यहां

---

1 सायण ने रम्भिणीव का अर्थ योषिदिव किया है जिसका समर्थन मैंक्समूलर ने भी किया है। योषित् रोदसी ही है।

2 ऋ0स0 VII 59/8 ।

3 ऋ0स0 III 168/6 ।

4. ऋ0स0 II 172/2 ।

5. ऋ0स0 II 37/2, 88/3 ।

वाशी का अर्थ युद्ध घोष किया है[1] और इस अर्थ का कारण यह दिया है कि निघण्टु में वाशी को वावन के पर्यायों में गिना गया है (निघ: I. 11/11)। परन्तु एक अन्य स्थल (ऋ0स0 I 88/3) पर सायण ने वाशी: का अर्थ शत्रुओं को ललकारने वाला आरा नामक आयुध (शत्रुणा मा, कोशकमारास्थस्तयुधम्) किया है। वाशी के प्रयोग के सभी स्थलों पर विचार करने पर आयुध अर्थ ही ठीक प्रतीत होता है। मैक्समूनर ने इसका अर्थ परशु किया है।

किन्ही स्थलों पर मरुतों को धनुधर भी कहा गया है और इनके धनुष, वाण निषंग का उल्लेख किया गया है।[2] एक स्थल पर इनके हाथ में तलवार (कृति) की भी चर्चा की गयी है (हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च संदधे ऋ0सं0 I 168/3)। एक स्थान पर मरुतों की उपमा कवचधारी योद्धाओं से दी गयी है (वर्मण्यन्तो ने योधा: ऋ0सं0 X 78/3) । ऋषि कण्व घोर प्रार्थना करते हैं कि हे मरुतों तुम्हारे आयुध शत्रुओं को परास्त करने तथा उनका प्रतिरोध करने में स्थिर हों (स्थिराव: सन्त्वायुधा पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कभे ऋ0सं0 I 39/2) ।

मरुतों का गण रथों पर शोभित होता है। मरुद् गण एक ही रथ पर नहीं अपितु अलग-अलग रथों पर सवार होते हैं, अतः ऋषि श्यावाश्व आत्रेय उनके रथों के झुण्ड (शर्धं रथानाम् ऋ0सं0 V 53/10) की चर्चा करते हैं। परन्तु कहीं-कहीं मरुत् रथ का एक वचन में भी प्रयोग

---

1. व्राश्य: शब्दविशेषा: परकीयेसनाभीतिहतेव: । वासी वाणी इति वाड्नामसु पठितत्वात् ।
2 ऋ0स0 VI 57/2 ।

हुआ है।[1] मरुतों के रथ बहुत सुन्दर है, अतः इनको सुन्दर रथ वाले (सुरथाः ऋ0सं0 V 57/2) कहा गया है। इन्हें सुनहरे रथ वाले (हिरण्यरथाः ऋ0सं0 V 57/1) तथा देदीप्यमान रथ वाले (युवा स मारुतों गणस्त्वेष रथो अनेश्चः ऋ0सं0 V 61/13) कहा गया है क्योंकि इनके रथों पर विद्युत विराजमान है (विछुन्न तस्थों मरुतों रथेषु वलेः ऋ0सं0 I.64/9) और इसलिये इनके रथ विद्युन्यत् कहे गये है (आ विद्युन्मद्रिर्मरुतः स्वर्कें रथैभियांत...ऋ0सं0 I. 88/1)। इनके रथ अग्नियों के समान अपनी ही दीप्ति से देदीप्यमान हैं (आं अग्नयो न स्वविद्युतः प्रस्यन्द्रासो धुनीनाम् ऋ0सं0 I.87/3)।

मरुतों के रथ-चक्र भी स्वर्णिम हैं (हिरणचक्रान् ऋ0सं0 I 88/5) ओर इन चक्रों की पंक्तियां (हाल) भी स्वर्ण की हैं (हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृधः ऋ0सं0 I 64/11)। परन्तु ये पविया बज्र सी कठोर है और शत्रुओं को कुलचने में समर्थ हैं। रथ की पाव से मरुद्गण भूमि पर प्रहार करते है (पव्सा रथस्य जड्घनन्त भूमे ऋ0सं0 I 88/2) अर्दि (मेघ) को चकनाचूर कर देते है । पाव के किनारे बड़े पैने हैं (पविसु क्षुरा अधि ऋ0सं0 I 166/10)। मरुतों के रथ को कठोर पवि वाला (वीकुपवि-ऋ0सं0 V 58/6) कहा गया है। इस रथ की नाभि भी सुदृढ़ है और इसलिये इनके रथ को वृषनाभि (रथेन वृषनाभिना ऋ0सं0 VIII 20/10) कहा गया है । इनके रथ का अक्ष दोनों चक्रों को एक साथ जोड़े रहता है। (अज्ञों वश्चक्रा समया कि वाते ऋ0सं0 I 166/9)।

---

1 ऋ0स0 II 167/5 ।

मरुतों के रथ में घोडे जुडते हैं (यद् युज्जते मरुतों रुकम बज्रसो ध्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ऋ0सं0 ॥ 34/8) । अतः इनको (अपने रथों में) घोड़े जोतने वाले (अश्वयुजः) कहा गया है। ये घोड़े अरूणावर्ण पिशङ्गवर्ण (पिंगलवर्ण) हैं (तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गै शुभे कं यान्ति रथतूर्भिश्वैः ऋ0स0 I 88/2) अतः मरुतों को पिशङ्ग्गाश्वाः अरुणाएवाः (ऋ0सं0 V 57/4) बताया गया है। इन घोड़ों का खुर स्वर्णिम हैं (अश्वेहिंरण्यपाणिभिः देवास उपगन्तन । ऋ0सं0 VIII 7/7) । ये दृढ़ खुरो वाले (वीकुपाणि ऋ0सं0 I 38/11) है। स्पष्ट है कि मरुतों के रथों में जुड़ने वाले घोड़े बहुत सुन्दर हैं, अतः मरुतों के लिये सुन्दर घोड़ों वाले (स्वश्वाः ऋ0सं0 V 57/2) विशेषण प्रयुक्त हुआ है। ये घोड़े बलिष्ठ है, अतः मरुतों का रथ बलिष्ठ घोड़ों वाला (वृषणश्वे ऋ0सं0 VIII 20/10) है।

मरुतों के लिये उनके वाहनों के सम्बन्ध में एक विशेषण प्रायः प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ चितकबरे घोड़ों वाले अथवा चितकबरे हरिणों के वाहन वाले (पृषदश्व)[1] अनेक स्थलों पर इनके वाहनों को चितकबरी हरिणिया (पृषसी)[2] बताया गया है। इन हरिणों के आगे-एक रोहित वर्ण हरिण उपो रथेषु-पृषतीरमुग्ध्वप्रष्टिर्वहति रोहितः (ऋ0सं0 I39/6) जुता होता है।

इनकी लगामें भी मजबूत हैं (स्थरश्मानः ऋ0सं0 V87/5) ऋषि श्यावाश्व आत्रेय ने मरुतों को घुड़सवार के रूप में भी चिन्नित किया है वे कहते हैं, (हे मरुतों) कहाँ है तुम्हारे घोड़े, कहाँ है लगामें, तुम कैसे

---

1 ऋ0सं0 II 87/4, 34/4 ।

2 ऋ0स0 II 37/2, 64/8, 24/3 ।

आए? (घोड़ों की) पीठ पर काठियां हैं, नाक में लगाम हैं। इस वर्णन में मरुद्गण घुड़सवार प्रतीत होते हैं। मरुतों के हाथ में कोड़ा (कशा) है। ऋषि कण्व को इनके कोड़े की कड़क सुस्पष्ट सुनायी देती है।

मरुतों के वाहन तीव्र वेग वाले हैं । यें द्रुतगामी अश्वों वालें (आश्वश्व)[1] हैं। इनके चितकबरे हरिणों की चाल मन के वेग जैसी है। (मनोजुवो ऋ0सं0 I 85/4)। ऋषि श्यावश्व आत्रेय के शब्दों में (मरुतों ने) हवाओं को ही अश्व के रूप में धुरी में जोत लिया है (वातान् ह्मश्वान् धुर्यायुयुज्रे ऋ0सं0 V 58/7)। वस्तुतः वायु ही मरुतों का वाहन है, जिसकी कल्पना अश्व के रूप में कर ली गयी है। इसी प्रकार की बात ऋषि भरद्धाज ब्राईस्पत्य ने इन शब्दों में कही है- मरुतों ! तुम्हारी गाड़ी में भले ही हरिण या घोड़े न जुते हों, वह भले ही सारथी-रहित हो और उसमें लगामें भी न हों, परन्तु वह रूके बिना अन्तरिक्ष के बीच अपने मार्ग पर तीव्र गति से पृथ्वी ओर द्युलोक के बीच चलती है।[2]

वायु के अश्वों पर सवार मरुतों के प्रचण्ड वेग से ऋषिगण अभिभूत है । वायु को इनका वाहन ही नहीं कहा गया है, अपितु प्रचण्ड वेग में इनकी उपमा भी वायु से दी गयी है। ये वायु के समान स्वेच्छा से प्रयाण करने वाले हैं (वातासो न स्वयुजः ऋ0सं0 X 78/2) तथा वायु के समान प्रचण्ड घोष करते हुए झपटने वाले हैं ।

---

1 इहेव शृण्व एषा कशा हस्तेषु वदान् ।
नियामञ्चित्रमृञ्जते ।। I ऋ0स0 37/3 ।

2 ऋ0स0 VI 58/1 ।

मरुतों के लिये प्रयुक्त अनेक विशेषणों से इनकी द्रुतगति तथा प्रचण्ड वेग को स्पष्ट किया गया है। इनको अयासः अथवा गतिशील[1] आशवः, इष्मिणो[2] द्रुतगति से आगे बढने वाले एवयाव्नः[3] (त्वरित गति से चलने वाले), तुरासः (त्वरित) तुरण्यवः (प्रबल वेग से बढ़ने वाले) त्वेषयामाः, प्रचण्डगति वाले, प्रयज्यवः (अनुधावन करने वाले), मरवाः (द्रुत) (गतिशील), तथा स्पन्द्रासः (झपटते हुये) कहा गया है। इन विशेषणों की भरमार असंदिग्ध रूप से प्रकट कर देती है कि वैदिक ऋषि की कल्पना में मरुतों के साथ उनका प्रबल वेग अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

वैदिक ऋषि की दृष्टि में मरुद्गण तेज उड़ान में पक्षियों के समान हैं।[4] इसलिये मरुतों को कहीं-कहीं गृध्राः अथवा श्येनाः कहा गया है। मरुतों के प्रचण्ड प्रयाण में उनके घोड़े कभी थकते नहीं और झटपट अपने गन्तव्य तक पहुँचकर ही दम लेते हैं (न वोऽश्वाः अथयन्ताह सिस्रतः सद्यौ अस्याध्वनः पारमश्नुथे ऋ0सं0 V 54/10) । अपने प्रबल वेग की शक्ति से मरुद्गण अन्तरिक्ष को नाप डालते है । इनके प्रयाण को पर्वत और नदियाँ नहीं रोक पाते और ये जहाँ चाहते है, पहुँच जाते हैं (न पर्वता

---

1. ऋ0स0 I 64/11 ।
2 ऋ0स0 I 87/6 ।
3 ऋ0स0 II 34/11 ।
4 ऋ0स0 VI 59/7 ।

न नद्यां वरन्त वा यत्राचिघ्वं मरुतो गच्छथेदु तत्) । इनके प्रचण्ड वेग की उपमा ढलान की ओर बहते जलों के प्रबल वेग से भी दी गई है। इनके प्रचण्ड वेग से पृथ्वी यों कांप उठती है मानों उसके टुकड़े-2 हो जायेंगे। और द्युलोकवर्ती पाषाण (मेघ) तथा पर्वत शृंखलाओं को भी ये कपॉ देते हैं (अश्मानं चित् स्वयं पर्वत गिरि प्रच्यावयन्ति यामभिः ऋ0सं0 V 56/4) । इनके प्रयाणों के सामने पृथ्वी फैल-फैल जाती है (दीर्घ पृथु प्रप्रथे सद्म पार्थिव येषामज्मेषु ऋ0स0 V 87/7) इनकी अपनी चाल के लिये प्रसिद्ध (यामश्रुत-ऋ0सं0 V 52/15) बताया गया है क्योंकि इनको विचित्र चाल घरों में रहने वाले लोगों को डराने वाली ही नहीं है (भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्यां चित्रों वा यामः प्रयताएवृष्टिष ऋ0सं0 I 166/4) अपितु शोभायुक्त भी है और इसलिये इनको शुभं यावानः (ऋ0सं0 I 89/7) विशेषण से भी शोभित किया गया है।

वैदिक संहिताओं में मरुत्-सम्बन्धी विरला ही कोई मन्त्र होगा जिसमें मरुतों के बल-पराक्रम की ओर संकेत न किया गया हो। सत्य तो यह है कि वैदिक ऋषि मरुतों की शक्ति, ओज और पराक्रम का वर्णन करते नहीं अघाते और इस दृष्टि से वैदिक देव-गणों में मरुद्गण इन्द्र से प्रतिस्पर्धा करते से जान पड़ते हैं। मरुतों के बल पराक्रम से वैदिक ऋषि कितने अभिभूत है कि यह उनके लिये वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त उन विशेषताओं से बहुत कुछ स्पष्ट हो जाएगा जो उनकी शक्ति की ओर संकेत करते है निम्नलिखित विशेषण पदा विशेषतः ध्यान देने योग्य हैं:-

नर मरुद्गणों को नरः विशेषण से प्रायः विभूषित किया गया है और उन स्थलों पर नरः शब्द का अर्थ केवल मनुष्य, पुरुष ही नहीं है अपितु पौरुष युक्त बलशाली पुरुष अथवा शूरवीर से हैं । हेशूरों, तुम जो द्युलोक और पृथ्वी को कंपाने वाले हो, जो (द्युलोक और पृथ्वी को) वस्त्र के छोर के समान कँपाते हो, तुममें बलिष्ठ कौन है?

इन शूर मरुद्गणों के नृम्ण (पौरुष) की वैदिक ऋषि अर्चना करते हैं । मरुतों के सिरों में पौरुषयुक्त विचार भरे हैं (नृम्णा शीर्षसु ऋ0सं0 V 57/6), इनके रथ भी पौरुष तथा साहस से भरे हैं इसीलिये मरुतों से पौरुष की याचना की जाती है। (सा विट सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ऋ0सं0 VII 65/5) ।

पौरुष सम्पन्न होने के कारण मरुतों को नृमणाः[1] (पौरुषयुक्त विचारों वाले) कहा गया है (ऋ0सं0 I 167/5) ।

वैदिक ऋषियों ने मरुतों के शुव्य अर्थात् बल की चर्चा की है। वे इनके उग्र बल से सुपरिचित हैं (पद्मा हि रुद्रियाणशुष्ममुग्रंमरुतां शिमीवतताम्। ऋ0सं0 VIII 20/3) । उनकी दृष्टि में इनका बल शुभ्र है (शुभ्रों वः शुष्मः ऋ0सं0 VIII 56/8) । शुष्म से युक्त होने के कारण मरुतों को शुष्मिणः अर्थात् बलशाली कहा गया है और ऋषि गण इस शुष्मी मरुद्गण के लिये मन्त्रों का उद्घोष करते हैं। (प्रवः शर्धाय धुव्वये त्येषयुम्नाय शुष्मिणे। देवतं व्रस गायत।। ऋ0सं0 I 37/4) ।

---

1 अवेस्ता में इसी अर्थ में कृशाश्व के लिए भी विशेषण प्रयुक्त हुआ है। (नृमणः कृशाश्वः) यस्न 9/11 ।

मरुतों के लिये वैदिक संहिताओं में उग्राः[1] अर्थात् बलशाली अथवा भयकर विशेषण अत्यधिक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। उग्र शब्द का बलशाली अर्थ ऐसे उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जैसे कि त उदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके (ऋ0सं0 VI 66/6)। यहां इन्हें शवसा, उग्राः अर्थात् बल से बलशाली कहा गया है। इसी प्रकार भयंकर अर्थ इस उद्धरण में स्पष्ट है- उग्रं व ओजः स्थिरः शवांरि (ऋ0सं0 VII 56/7)- हे मरुतों तुम्हारा ओज भयंकर है, तुम्हारी शक्तियां स्थिर हैं। मरुतों को उग्र-वाहवः (बलशाली भुजाओं वाले) भी कहा गया है। मरुतों के गण को तुविष्मान्[2] अर्थात् शक्तिशाली कहा गया है । मरुद्गण तुविष्मान् ही नहीं अपितु तुविजात अर्थात् शक्ति से उत्पन्न (ऋ0सं0 I 168/6) भी हैं। इनको तुविषुम्नासःा अर्थात् शक्ति से जगमगाते (ऋ0सं0 I 88/3) कहा गया है। ये तुविमन्यवः अर्थात् शक्तिशाली विचारों वाले (ऋ0सं0 VII 58/2) बताये गये हैं और बलवती वाणी वाले होने के कारण इन्हें तुविस्वनः (ऋ0सं0 I 166/1) अथवा तुविस्वानः (ऋ0सं0 V 56/7) कहा गया है।

मरुद्गण के सम्बन्ध में घृष्णु शब्द साहस, शक्ति, तथा साहसिक, बलशाली दोनों अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। साहस (घृष्णुना) तथा प्रबल (शुशुर्वासः) ये (मरुद्गण) शत्रुओं को साहसपूर्वक (घृषता) समुद्र के समान घेरते हैं तथा है ऋृषि ! उपहारों के लिये मरुतों के पास ऐसे जाओं जैसे कोई स्त्री अपने मित्र के पास जाती है और ओज से बलवान अथवा

---

1 अवेस्ता में भी प्राप्त है।

2 इसमे तव् का प्रयोग शक्तिशाली होने के अर्थ में मिलता है।

साहसिक हे मरुतों । हमारी स्तुतियों से स्तुत होकर तुम द्युलोक से भी यहां चले आओ (ऋ0सं0 V 52/14)- इन प्रसंगों में घृष्णु शब्द के ये अर्थ स्पष्ट हैं। मरुद्गण स्वयं तो धृष्णु हैं ही वे घृष्णु- सेनाः (ऋ0सं0 VI 66/6) साहसिक सेना वाले भी हैं। तथा साहसिक के अर्थ में मरुतों के लिए घृषद्विनः (ऋ0सं0 VI 52/2) तथा आघृष (ऋ0सं0 I 39/4) विशेषण भी प्रयुक्त हुये हैं।

अन्य देवों के समान मरुतों के लिये भी एक स्थल पर असुराः विशेषण प्रयुक्त हुआ है (ऋ0सं. I 64/2) और एक स्थल पर मरुतों से असुर पुत्र की प्रार्थना की गयी है- अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जानां यो असुरो विधवा (ऋ0सं0 VII 56/24) । एक स्थल पर मरुद्गणों को घोराः अर्थात् प्रचण्ड कहा गया है तथा दो स्थलों पर इन्हें घोरवर्पसः अर्थात् भयंकर आकृति वाले विशेषण से विभूषित किया गया है, रुद्र के पुत्रों के लिये ये विशेषण सर्वथा उपयुक्त हैं।

अध्रिगु एक स्थल पर मरुतों को अधिग्रावः पर्वता इव (ऋ0सं0 I 64/3) पर्वतों के समान दुर्धरे कहा गया है। पर्वतों से उपमा दिये जाने से तो अध्रिगु का अर्थ दृढ़, स्थिर ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मरुतों को रिशादसः अर्थात् शत्रुओं को चबाने वाले कहा गया है। ऋषि कण्व घोर कहते है, ये शत्रुओं के भक्षणकर्ता (मरुतों) न द्युलोक में ओर न पृथ्वी पर ही तुम्हारा कोई शत्रु विदित है (न हि वः शत्रुर्विविदे

अधि यपि न भुम्यां रिशादसः ऋ0सं0 I 39/4) । ऋषि वशिष्ठ कहते हैं, हे तपाने वाले अपनी सहायता से शत्रुओं को हराने वाले मरुतों यह हविष् तुम्हारी है, इसका आस्वादन ले (सान्तपना दर्द हविर्मरुतज्जुजुष्टनः युमकोती रिसादसः ऋ0सं0 VIII 59/9)

मरुद्गण के लिये मायिन विशेषण प्रयोग ऋक् संहिता में दो स्थलों पर हुआ है (ऋ0सं0 I 64/7, 58/2) । सायण ने इन स्थलों पर इसका, अर्थ प्रज्ञावान् किया है, परन्तु एक अन्य स्थल (ऋ0सं0 I 39/2) परे मादितः (षष्ठी एक वचन) का अर्थ छद्म चारिणः किया है। वस्तुतः इस से ऋक्संहिता में रहस्यात्मिका, गुप्त शक्ति अथवा मंत्रात्मिका शक्ति अभिप्रेत है। अतः मरुतों के सम्बन्ध में भी मायिन् शब्द का अर्थ रहस्यात्मिका शक्ति से युक्त करना ठीक होगा।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मरुद्गणं तवसः अर्थात् बलिष्ठ है (ऋ0सं0 I 166/8) और वे समृद्धि के लिये मरुतों के बलिष्ठगण (तवसं गणम्) का आश्रय लेते हैं। मरुद्गण अपने रथों पर बलिष्ठ होते हैं। ऋषि गोतम की दृष्टि से मरुद्गण स्वतवसः अर्थात् अपने आपसे बलिष्ठ है (ऋ0सं0 I 64/7) ।

एक ऋक् में मरुतों के गण को तविषीमत् अर्थात् बलशाली कहा गया है (तुमुनूनं सविषीमन्समेषां रतुष, गण मारुतं नव्यसीनाम् ऋ0सं0 V 58/1) और एक अन्य ऋक में मरुतों को बढ़ते बल वाले कहा गया है

यदङ् तविषीयवो यामंशुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत (जैसे ही बढ़ते बल वाले मरुतों ने अपना गमन-मार्ग पहचान लिया, पर्वत मेध झुक गये) ऋ0सं0 VIII 7/2 ।

मरुतों को एक ऋक् में शूराः विशेषण दिया गया है (ऋ0सं0 I 64/9) तथा अनेक स्थलों पर शूरों से इनकी उपमा दी गयी है। शूरों के समान युयुत्सुये मरुद्गण विजयी शूरो के समान प्रकाशित होते हैं जिगीवांसो न शूरा अभिमवः (ऋ0सं0 X 78/4) ।

चरक्संहिता के एक सूक्त में मरुतों को अहिमन्यवः कहा गया है, ये बल से अहिमन्यु हैं । अहिमन्यु का अर्थ सांप जैसी बुद्धि वाले है। सायण ने शवसो के साथ इस विशेषण की संगति इस प्रकार उत्पन्न की है- बलेन आहनशीलमन्यु युक्ताः यद्धिषयः कोपो जायते वस्य हनेन समर्था इत्यर्थः ।

ऋक्संहिता I 64/11 में मरुतों को ध्रुवच्युतः अर्थात् ध्रुवों को, स्थिरों को गिराने वाले कहा गया है। वैदिक ऋषियों ने मरूतों के ध्रुव च्युत् रूप का बहुशः वर्णन किया है- हे मरुतों ! जैसा तुम्हारा बल है उससे तुमने जनों को कपा दिया, पर्वतों को हिला दिया। (मरुतों युद्ध दो बल जनां अच्छुिच्यवीतन्, गिरीरंच्युच्यवीतन ।। ऋ0सं0 I 37/12), हे नरो ! जब तुम जो स्थिर है उसको मार गिराते हो, जो भारी है उसको पटक देते हो, जब तुम पृथिवी की वने के बीच से, पर्वतों की घाटियों के बीच से गमन करते हो (परा हयत् रिथरं दृश नरो वर्तयथा गुरु । वियाथन

वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ।। ऋ0सं0 I 39/3), (ये मरुद्गण) पृथ्वी के और द्युलोक के समस्त दृढ़ पदार्थो को अपनी शक्ति से गिरा देते हैं (दृक्त विद् विश्वा भुवानि पार्थिवा प्रच्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ऋ0सं0 I 64/3), (मरुद्गण) अपने ओज से अच्युतों (न डिगने वालों) को डिगा देते हैं। (प्रच्या-वयन्ति अच्युता चिदोषसो ऋ0सं0 I 85/4), और (ये मरुद्गण) अच्युत ध्रुवों (न डिगने वाले स्थिर पदार्थो) को गिरा देते हैं (उक्त च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि ऋ0सं0 I 167/8) चमकते भालों वाले, शक्ति-पुत्र, धूल रहित मरुतों ने दृढ़ों को भी गिरा दिया (अरे-णवस्तु विजाता अचुच्युवुद्रानि चिन्मरुतों भ्राजदृष्टयः ऋ0सं0 I 168/4), अजेय (मरुद्गण) पर्वतों को कंपा देते हैं। प्रवेपयन्तिपर्वता अदाम्यः ऋ0सं0 III 26/4, तुमनें हविष् अर्पित करने वाले को धन देने के लिये (हे मरुतो) तुम द्युलोक को, पर्वतो को हिला देते हो, भय से वन प्रदेश तुम्हारा रास्ता छोड़ देते हैं, हे पृश्नि पुत्रों। उग्रों। जब तुम विजय के लिये (अपने रथों पर) पृषतियों को जोतते हो तो तुम पृथिवी को कंपा देते हों (धनुष यां पर्वतान् दाशुषे वसुनिवो वना जित्ते यामनो भिया। कोपयध पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे दुग्राः पृषतीरयुरवम् ।। ऋ0सं0 V 57/3), (उग्रमरुतो) तुम्हारे भय से वन झुक जाते है, पृथिवी और पर्वत कांप उठते हैं (वना विदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद रेजते पर्वतोश्चत् ऋ0सं0 I 60/2) और (मरुद्गण) स्थिरों को झुकाने वाले हैं

पौरुष, बल, पराक्रम तथा प्रचण्डता सूचक उपयुक्त विशेषणों की विविधता और संख्या में अधिकता स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मरुद्गण बल-पौरुष के प्रतीक हैं।

मरुतों के बल पौरुष के अनुरुप ही उनकी वाणी भी बलवती और भय से कपाने वाली है। इसीलिये इनको (सशक्त वाणी वाले कहा गया है और ऋषि श्यावास्व आत्रेय के शब्दों में, हे मरुतों! तुम्हारे गर्जन से प्रवृद्ध पर्वत (मेघ) भयभीत हो जाता है और द्युलोक के छोर कांप उठते है । ये मरुद्गण सिंह के समान गरजते हैं तथा ये अपने घोष को चारों ओर फैलाते हैं (स्वरन्ति घोष विततम् ऋ0सं0 V 54/12) । जब ये नर प्रयाण करते है तो इनका विषय-घोष वज्र-निर्घोष सा गूंज उठता है। जयतामिव तन्युतुर्मरुतामेति पष्णुया इच्छुम यायना नरः ।। (ऋ0सं0 I 23/11) । प्रयाण करते हुए प्रचण्ड मरुतों का गर्जन चारों और सुनायी देता है। (प्रतिधोराणामंतानामयासां मरुता शुण्व आयतामुपव्दिः ऋ0सं0 I 169/7) ।

मरुतों का यह गर्जन क्या है, इसकी सुन्दर व्याख्या ऋषि अगस्त्य के इन शब्दों से हो जाती हे, (मरुद्गण) मेघों की वाणी उच्चरित करते हैं (अभ्रियां वाचमुदीरन्ति ऋ0सं0 I 168/9) स्पष्ट है कि मेघों का गर्जन ही मानों मरुतों का उद्घोष है। अथर्व-संहिता ( IV 15/4) में भी इनको घोषिणः कहा गया है।

ऋषि अगस्त्य ने एक ऋक (167/3) में मरुतों की सहचरी की उपमा सभावती विदथ्या वाक (सभावती विदथ्येव संवाक्)[1] से दी है। मरुतों की वाणी के विषय में ऋषियों की इस भव्य कल्पना ने मरुतों को गायक तथा स्तोता के रूप में प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी होगी। जहां वे एक और सिंह का गर्जन करते हैं, वहां साथ ही वे मन्द्र-स्वर वाले, सुजिह्व तथा मुख से गान प्रकट करने वाले (मन्द्राः सुजिह्वा स्यरिवार आसंभिः ऋ0सं0 I 166/11) भी हैं। अतः ऋषियों को ये कहीं वाण[2] नामक वा़-यंत्र बजाते हुये (धमन्तो वाण ऋ0सं0 I 85/10) दिखााई देते है। अथर्व-संहिता में भी मरुतों को गायतः (गाते हुये) विशेषण से विभूषित किया गया है (अथ0 IV 15/3) और पर्जन्य को सम्बोधित कर कहा गया है कि हे पर्जन्य! मरुतों के गण तुम्हारे प्रति पृथक्-पृथक् गान करें। स्पष्ट है कि मरुतों का गान वर्षा का आह्लादकारी गान है। मरुतों को ऋसंहिता में विरप्शिनः (गायक) विशेषण के साथ  भी स्मरण किया गया है (ऋ0सं0 I 64/1)। वाणी के इन नानाविध रूपों, भयंकर के साथ ही मधुर रूपों का प्रयोग करने वाले मरुतों को ऋषि ने वाणी के पुत्र (सुनवो गिरः I 37/10) ठीक ही कहा है।

---

1 ऋ0स0 II 167/3 ।

2. ऋ0स0 I 85/10 ।

मरुद्गण गाने के साथ-साथ नाचते भी हैं। ऋषि सोभरि काण्व ने इनको नाचने वाले (नृतव: ऋ0सं0 VIII 20/22) कहा है। इनके नृत्य का सचित्र वर्णन ऋषि श्वावाश्व ने इन शब्दों में किया है, छन्दोबद्ध पदन्यास वाले उद्घोष करते हुये, ये गायक (मरुद्गण) उत्स (जल-स्रोत-मेघ) के चारों ओर नाचने वाले हैं। (ऋ0सं0 V 52/12)।[1] यहां भी मरुतों का मेघ को घेरकर नृत्य करना वर्षा के दृश्य का ही कवित्वमय वर्णन है।

वैदिक ऋषियों ने मरुतों को जहां एक ओर अपने प्रचण्ड वेग से सृष्टि को कंपाने वालों के रूप में देखा है, वहीं इन्हें खिलाड़ी के रूप में भी देखा है। ऋषि अगस्त्य के शब्दो में, जैसे पिता अपने पुत्र के लये मधु (मधुर पदार्थ) जुटाते है इसी प्रकार अपने योजकों के लिये मधु लाने वाले खिलाड़ी मरुद्गण विद्थों में क्रीडा करते हैं (नित्यं न सुनुं मधु विभ्रत उपक्रीलन्ति क्रीला विदेथेषु पुष्वय: ऋ0सं0 I 166/2 । ऋषि श्यानाश्व मरुतों की क्रीडा को इस रूप में देखते हैं- मरुतों ऋष्टियों से युक्त होकर जब तुम क्रीड़ा करते हो तो तुम सब मिलकर जलों के समान दौड़ लगाते हो (यत् क्रीकथमरुत ऋष्टिमन्त आप इस सध्रयंचो धवव्गे ऋ0सं0 V 60/8) । स्पष्ट है कि वृष्टि के साथ-साथ चारों ओर उफान के साथ बहती जल-धाराओं के रूप में ऋषि को मरुतों की क्रीड़ा के दर्शन हो रहे हैं। ऋषि वशिष्ठ को मरुतों की क्रीड़ा स्तनपायी बछडों की उछल कुद सी लगती है। द्रुतगामी (अश्वों) के समान क्षिप्रगति युवा, बच्चों से दिखाई देने

---

1 छन्दस्तुभ: कुभन्यव उत्समा कीरिणे नृतु: ।

वाले मरुद्गण, घर में स्थित बच्चों के समान शुभ्र हैं और दूध पीते बछड़ों के समान क्रीड़ा करते है (अत्यासों ने ये मरुत: स्वयों यज्ञदृलो न शुभयन्त मर्या:। ते हर्म्येष्ठा: शिसवो ने शुभ्रा वत्सासों ने प्रक्रीलिन: पयोधा:।। ऋ0सं0 V 56/16)। ऋषि भार्गव के शब्दों में मरुद्गण क्रीडीशील बच्चों के समान (शिशूला न क्रीडय: ऋ0सं0 X 78/6) हैं।

प्रचण्ड शक्ति वाले मरुद्गण मनुष्यों के मित्र सहायक और रक्षक हैं। ऋषियों ने उन्हें नृषाच: (ऋ0सं0 I 64/9) अर्थात् मनुष्यों के मित्र के रूप में देखा है । ये स्वतंत्र शक्ति वाले रुद्र (मरुद्गण) नमन करने वाले के पास अपनी सहायता के साथ पहुंचते हैं, ये हविष प्रदान करने वाले की कभी अवहेलना नहीं करते (नश्रन्ति रुद्रा अथवा नमस्यिनं न मर्थन्ति स्वतवसो हृविष्कृतम् ऋ0सं0 I 166/2) । ये मरुद्गण जो मत्य को हानि से बचाते हैं, मनुष्यों की रक्षा करते हैं (विश्वं ये मानुषा युगा पान्ति मत्यं रिष: ऋ0सं0 V 52/4) । ये तत्काल सहायता पहुंचाने वाले हैं। स्वाभाविक है कि मनुष्यों के ऐसे मित्रों, रक्षकों, सहायकों के सभी क्रिया-कलापों में ऋषियों को आकर्षक क्रियाओं के दर्शन हुये और इसीलिये उनका भयंकर निनाद से युक्त प्रचण्ड वेग उनके बच्चों अथवा बछड़ों की क्रीडा सा तथा सिंह-नाद सा उनका घोष मधुर गीत प्रतीत हुआ और ऋषियों ने मरुतों की गायक, नर्तक, क्रीडक के रूप में कल्पना की ।

मरुद्गण को ऋषियों ने अनन्त सम्पत्ति वाले[1] कहा है। अपने याजकों के लिये मरुद्गण की सम्पत्ति का यह अक्षय भण्डार सदैव उन्मुक्त रहता है और इसीलिये ऋषियों ने उन्हें सुदानवः अर्थात् उदार दानी विशेषण के साथ स्मरण किया है। मरुतों का यह दान उस प्रभूत वृष्टि के रूप में होता है जो उनके योजकों की अन्न-सम्पदा को बढाने वाली होती है। इसलिये मरुतों को पुरीषिणः (भूमि जोतने वाले) पद से सम्बोधित करते हुये कृषि श्यावाश्व कहते है- हे मरुतों! किसानों। समुद्र से वृष्टि को उठाकर (हमारी धरती पर) बरसा दो (उदीरयर्था मरुतः समुद्रतों युयं वृष्टिं वर्ष तथा पुरीषिणः ऋ0सं0 V 55/5) और (हे मरुतो) जिस वृष्टि रुपिणी कृपा से तुम (अपने योजकों के) पुत्र-पोत्रों के लिये अक्षीयमाण वान्य-बीजों का बहन करते हो, (उसी कृपा से) हममें भी वे पदार्थ निहित कीजिये, जिनकी हम कामना करते है धन, आयु, सौभाग्य (येन तोकाय तनयाय धान्य बीजं वहध्वे आश्रितम् । अस्मभ्य तद्धश्रन यदा ईमहे राधो विश्वार्यु सोभगम् ।। ऋ0सं0 V 53/13) ।

1 ऋ0स0 II 34/4, VI 57/5 ।

वैदिक-संहिताओं में मरुत्सम्बन्धी मत्रों में विरले ही ऐसे मंत्र हैं जिनमें मरुतों द्वारा वृष्टि किये जाने की ओर किसी न किसी रूप में संकेत न किया गया हो, अपितु वस्तुस्थिति यह है कि अधिकांश मंत्रों में मरुतों के बल पराक्रम के प्रभावकारी वर्णन के साथ-साथ उनके वृष्टि-कर्म का भावपूर्ण वर्णन भी किया गया है। स्पष्ट है कि ऋषियों की दृष्टि में मरुतों का प्रमुख कर्म वृष्टि लाना ही है। मंत्रों में मरुतों के लिये अनेक ऐसे विशेषण प्रयुक्त हुये है जो उनके वृष्टि कर्म से सम्बद्ध हैं।

मरुद्गणों को एक ऋक् (V 54/2) में उदन्यवः अर्थात् जल के इच्छुक अथवा जल का अन्वेषण करने वाले कहा गया है- हे मरुतों तुम्हारे देदी प्यमान, जल का अन्वेषण करने वाले, अन्न की वृद्धि करने वाले, घोड़े जोतने वाले, चारों ओर से घेरने वाले (गण यहां आयें) ।

मरुतों को उदवाहसः (ऋ0सं0 V 58/3) अर्थात् जल का वहन करने वाले कहा गया है। ऋषि श्यावाश्व प्रार्थना करते हैं कि जल का वहन, करने वाले तुम्हारे गण, वे समस्त मरुद्गण, जो वर्षा को प्रेरित करते हैं, आज यहां आयें (आ वो यन्तुदवाहसो अथवृष्टिं ये विश्वं मरुतों उन्नति ऋ0सं0 V 58/3) ।

ऋषि नोधा गौतम ने मरुतों के लिये द्राप्तिनः अर्थात् वर्षा की धारायें बिखरने वाले विशेषण का प्रयोग किया है। उनकी दृष्टि में घुलोक के दीर्घ काल वृषम्, रुद्र के यौवन सम्पन्न पुत्र (मर्या), शक्तिशाली (असुराः), निर्दोष सूर्यो जैसे पावक तथा दीप्त, जल धारायें बिखेरने वाले

(द्रप्तितं:) भुतगणों जैसे घोर आकृति वाले (मरुद्‌गण) उत्पन्न हुये (ते जशिरे दिव अब्बास उक्षणों रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपस:। पावकास: शुचय: सुर्या हव सत्वानों न द्रप्सिनों घोरवर्पस: ।। ऋ0सं0 I 64/2) ।

ऋषि गृत्समद ने ही एक अन्य एक में मरुतों को निमेषमाना: अर्थात् मेघ से जल ढालते हुए[1] कहा है।

ऋषि बोधा गौतम ने एक ऋक् में मरुतों को मेघ पर प्रहार कर वृष्टि की वृद्धि करने वाले कहा है।

मरुतों के वृष्टि-कर्म की ओर ऋषियों ने न केवल तत्सम्बन्धी विशेषणों द्वारा ही संकेत किया है, अपितु उपमाओं-आदि के द्वारा उसका प्रभावकारी वर्णन भी किया है। अपने प्रचण्ड वेग के साथ मरुद्‌गण का मेघों पर आघात करना और उन्हें छितराना ऋषि कण्व को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई वृषभ गायों के बीच क्रीड़ा कर रहा हैं, गायों के बीच वृषभ के समान (मेघों के बीच) खिलाड़ी मरुद्‌गण की प्रशंसा करो जो (मरुतों का गण वृष्टि रूपी) रस के आस्वादन से बढ़ता है (प्रशंसा गोष्वध्न्ये क्रीकं यच्छयों मारुतम् । जम्मे रसस्य वावृधे ऋ0सं0 I 37/5) । मेघों पर मरुतों का झपटना ऋषि श्यावाश्व आत्रेय को भी वृषभ का गायों पर झपटने जैसा लगा। वे कहते हैं झपटते वृषथों के समान वे (मरुद्‌गण) काली गायों (मेघों) पर कुद पड़ते हैं और तब तुम घुलोक तथा पृथ्वी पर मरुतों की शक्ति के दर्शन करते हैं । (ते स्पन्द्रान्यो न उक्षणा अति ष्कन्दन्ति शर्वर:।

मरुतामघा महोदिवि क्षमा च मन्महे ऋ0सं0 V 52/3) ऋषि नोथा गौतम की दृष्टि में मरुतों का अपने रथ की पवियों से मेघों को टुकड़े-टुकड़े कर छितराना ऐसा लगा जैसे प्रयाण करती सेनायें अपने पदचापों से रजकणों का ढेर उड़ाती हैं । वे कहते हैं कि जलों की वृद्धि करने वाले (मरुद्गण) प्रयाण करते (सैनिकों के) समान अपने रथों की स्वर्णिम पवियों से पर्वतों (मेघों) को मार कर उछालते हैं (हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृधः उज्जिध्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ऋ0सं0 I 64/11) । अपने प्रचण्ड वेग से मरुद्गण मेघो को कंपा देते हैं और उन्हें वृष्ठि के रूप में भूमि पर गिरा देते हैं ।

मरुतों का प्रयाण वृष्टि को लाने वाला है इसकी तो ऋषियों ने पदे-पदे चर्चा की है। शुभ्र (मरुद्गण) जल बिखेरते चलते हैं। ऋषि श्यावाश्व अत्रेय के शब्दों में नव-यौवन-सम्पन्न वितकाल मरुद्गण के पीछे-पीछे, (हे मरुद्गण) तुम्हारे रथ-समूह के पीछे-पीछे वृष्टि चलती हैं (तंव:शर्धंरथानत्वंषंगणं मारुतं नव्यसीनाम्। अनुप्रयन्ति वृष्टयः ऋ0सं0 V 53/10) ।

मरुतों द्वारा वृष्टि का लाया जाना अनेक ऋषियों को ऐसा प्रतीत हुआ मानों मेघ घुलोक का थन है और मरुद्गण इस थन को दुहते हैं और पृथ्वी को पयः- वर्षा से आच्छन्न कर देते हैं। ऋषि नोधा गौतम के शब्दों के कंपाने वाले (मरुद्गण) धुलोक के ऊधस् (मेघ) को दुहते हैं और पृथ्वी पर चारों ओर दूध (वृष्टि) का छिड़काव कर देते हैं

---

1 ऋ0स0 34/13, 34/13 ।

(जूहन्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमि पिन्वन्ति पयसां परिजय: I 64/5) । ऋषि काण्व की दृष्टि में ये ऊघस् पृश्नियों के हैं, जिनसे ये इन्द्र के लिये मघु-वर्षा करती हैं और इस मघु को उत्स (कूप), कवन्ध (मशक, पानी से भरा चर्म-पात्र) और उद्रन् (पानी भरा पड़ा या पात्र) इन तीन रूपों में प्रकट करती हैं (त्रीणि सरांसिं पृश्नयो दुदुहने वाज्रणे मघु । उत्सं कबन्ध नुद्रिणम् VIII 7/10) । इसी कल्पना को दृष्टि में रखते हुये ऋषिगृत्समद मरुतों से प्रार्थना करते हैं कि हे चमकते भालों वाले मरुतों ! मधु (सोम) का आनन्द लेने के लिये अपने घरो की ओर जाते हंसों के समान तुम एक साथ अक्षत मार्गो से अपनी चमकती हुयी भरे धनों वाली (पृश्नियों) के साथ आयो । (इन्धन्वभिसधेनुभी रण्शदूर्धाभरण्वरमभि: पधिभि: भ्रांजदृष्टय:। आ हंसासो न रवसराणि गन्तेन मधायार्दाय मरुत: समज्यव: II 34/5) । भरे थनों वाली गायों के साथ आने का अर्थ वृष्टि के साथ आने से ही हो सकता है।

धुलोक के ऊधस को दुहने के अतिरिक्त वैदिक ऋषि ने मरुतों द्वारा वृष्टि किये जाने को अन्य अनेक रुपों में कल्पना की है। ऋषि नोधा गौतम के ही शब्दों में, विदथों में शक्तिशाली, दानशील, मरुद्गण घृतयुक्त (उर्वरक) पयस् जैसे जलों को छिड़क देते हैं, मानों वे दानशील मैघरुपी वेगवान अश्व को वर्षा करने के लिये चारों ओर घूमा रहे हों (अथवा पानी के) अक्षव (कोश तथा) गरजते जल स्रोत (अथवा कूप, उत्स) को दुह रहे हों (पिन्वन्स्यणे मरुत: सुदानव: पयो घृतवद विदथेष्वाभुव: । अत्यं

न मिहे वि नियन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्तिस्तनयन्तमक्षितम् ।। I 64/6) ऋषि गौतम को प्रतीत हुआ मानों मरुतों ने उसकी प्यास बुझाने के लिये कुयें को ही उलट दिया हो (जिहमं नुनुद्रे वतं तयादिशा सिंचन्नुत्सं गौतमाय तुष्णजे I 85/11) ऋषि गौतम को एक अन्य स्थल पर मरुतों के द्वारा वर्षा का दृश्य ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होंने अपने रथों से जल भरे थैले पृथ्वी पर उड़ेल दिये हों- हे मरुतों ! चाहे जिस भी मार्ग पर जब तुम पक्षियों के समान गह्वरों के बीच अपना मार्ग पहचान लेते हो (अर्थात् मेघ रूपी गह्वर को चीर अपना मार्ग बना लेते हो) तब तुम्हारे रथों पर रखे जल-पात्र चारों ओर बिखर पड़ते है और तुम अपने स्रोता के लिये मघुपूर्ण धृत (वृष्टि) उड़त देते हो (उपह्येरषु पदचिर्ध्व यियिं वय इव मरुतः केनचित यथा। श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुश्रता मधुवेर्णमचंते ।। I 87/2) । ऋषि श्यावाश्व आत्रेय को मरुतों द्वारा पाई गई वर्षा उनके स्वेद गण प्रतीत हुये रुद्र के पुत्रों ने वायुओं के घोड़े अपनी धुरियों पर जोड़े और अपने स्वेद को वर्षा बना दिया (वातान् ह्यश्वान् धुर्या युयुर्जे वज स्वेदं चक्रिरे रुद्रिवासः V 58/7) ।

मरुद्गण मरुभूमि को भी विपुल वर्षा से सीचते हैं। ऋषि कण्व घोर के शब्दों में सचमूच ही उग्र और शक्तिशाली रुद-पुत्र (मरुद्गण) मरुभूमि में भी अवात (स्थिर) वृष्टि करते है (सत्यं त्सेषा अमवन्तो धम्वज्चिदा रुद्रियासः मिहं कृण्वान्त्यवाताम् I 38/7) । ऋषि श्यावाश्व आत्रेय ने मरुतों द्वारा मरुभूमि में वर्षा का इन शब्दों में वर्णन किया है- हे

शक्लिशाली, दानशील (मरुतों ने) हविष देने वाले के लिये जो द्युलोक का कोश उड़ेला उससे, ये द्युलोक तथा पृथ्वी में पर्जन्य की सृष्टि करते हैं और वृष्टियां मरुभूमियों की ओर बढ़ती हैं। आ यं नरः सुदानवो दयाशुषे दिवः कोशमयुच्यवः। विपर्जन्यं सृजिन्त रोदसी अनुधन्वना यन्ति वृष्टयः ।। V 53/6।

मरुतों द्वारा की गई वृष्टि भैषेज्य गुण युक्त है। इसकी ऋषियों ने प्रायः चर्चा की है। ऋषि श्यावाश्व आत्रेय प्रार्थना करते हैं कि हे मरुतों। हम प्रातः कल्याण-स्मृति युक्त तथा भेषज वृष्टि करने वाले तुम्हारे साथ रहें (वृष्टवी शंयोराथ उग्रि भेषजं स्याम मरुतः सहं V 53/14 ।

वृष्टि प्रदान करने वाले देवता के कारण मरुद्गणों का यज्ञ से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वैदिक संहिताओं में मरुतों के लिए अनेक ऐसे विशेषण पद प्रयुक्त हुए हैं जिनमें उनका यज्ञ से घनिष्ठ सम्बन्ध स्फुट होता है। उनके लिए ऋजीषिमः (ऋ0सं0 II 34/9) अर्थात् ऋजीषं (रस निचोड़ लेने के बाद सोम का बचा हुआ अंश) चाहने वाले कहा गया है। ऋवसंहिता में यह विशेषण अधिकांशतः इन्द्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। इससे इन्द्र के साथ मरुतों की किसी प्राचीनकाल में समान-स्तरों पर भी प्रकाश पड़ता है। मरुतों को पुरुप्रषाः अर्थात् अनेकों द्वारा (यज्ञ में) आहूत विशेषण के साथ स्मरण किया गया है। जिससे स्पष्ट है कि यज्ञों में मरुतों का विशाल जनंसख्या द्वारा आह्वान किया जाता था। इसी प्रकार इनके

लिये प्रयुक्त विशेषण यज्ञियाः भी यज्ञ के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं ।

मरुद्गण यज्ञ में स्वतंत्र रूप से आहूत होते थे इसके अनेकानेक उल्लेख वैदिक संहिताओं में प्राप्त होते हैं। यज्ञ में मरुतों का आह्वान करते हुये ऋषि अगस्त्य कहते हैं, (हेमरुद्गण !) तुम यज्ञ में समान भाव से तीव्र गति से जाते हो, प्रत्येक स्तुति को स्वीकार करते हो, अतः हमारे कल्याण तथा रक्षा के लिये मैं अपनी स्तुतियों से तुम्हें द्युलोक तथा पृथ्वीलोक से यहां बुलाता हूं (यज्ञायज्ञा चः समना तुतुर्वाणिर्थियंधियं वो देवयाउ दविध्वे। आ वो वांचः सुविताय रोदस्योमंहे विवृत्यायवसे सुवृकिभिः।। ऋ0सं0 I 168/1) । इसी सूक्त में आगे ऋषि अगस्त्य मरुतों का यजमान के हृदय में स्थायी रूप से प्रतिष्ठित होना, सोमरस का पीने वाले के हृदय में स्थायी प्रभाव जमाने के समान बताते हैं (सोमासो न ये सुता स्तृप्ताशवो हृत्सु पीतासो दुवरो नासते ऋ0सं0 I 168/3) ।

ऋषि गौतम राहुगण यज्ञ में मरुतों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि हे मरुतों ! बर्हिष् पर विराजिये, आप लोगों के लिए विस्तृत आसन प्रस्तुत है। इस मधु युक्त अन्न (सोम) से आनन्दित होये (सीदयता बर्हिरुरुवः सदस्कृतं मादयर्ध्व मरुतों मध्वो अंवसः ।। ऋ0सं0 II 85/6)। उसी प्रकार ऋषि श्यावाश्व आत्रेय सोम-पान के लिए मरुतों का आह्वान करते हुए कहते हैं रुद्रों ! और हे अग्नि ! तुम भी हमारे द्वारा दी जाती

हुयी इस विषय को जाने (अतो नोंरुद्रा उतंवा न्वस्याग्ने विसाद्धविषों यद् यत्राम । ऋ0सं0 VI 60/6) ।

यज्ञ के साथ मरुतों के सम्बन्ध में ऋषि वशिष्ठ ने गृह-याग में भाग प्राप्त करने वाले कहकर संभवतः यह सूचित किया है कि गृह-यागों के साथ वशिष्ठ-परिवार में इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था एक अन्य ऋक् में भी ऋषि वशिष्ठ कहते हैं हे मरुतों इस सहस्र-संस्थक गृहमेधीय भाग का सेवन कीजियें (सहिस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतों जुष श्वम् ऋ0सं0 VI 56/14) । ऋषि बिन्दु अथवा पूतदक्ष कहते हैं कि हमारे सभी मित्र गायक सोम-पान के लिए मरुतों का आह्वान करते हैं (तत्सु नो विश्वे अर्थ का सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ।। ऋ0सं0 VIII 94/3) ऋषि यज्ञ में आह्वान करते हुए कहते हैं कि यह सर्वाङ्ग सम्पन्न यज्ञ (हे मरुतों) आपके योग्य हैं, आप सब समवेत होकर यहां आइए (विश्वप्सुर्यज्ञो अवांगयं सुवः प्रयस्वन्तो न सत्रा च आ गत ऋ0सं0 X 66/4) । आगे ऋषि श्यूम रश्मि कहते हैं कि यज्ञ में दृढ़तापूर्वक स्थित जो व्यक्ति अन्त तक मरुतों को (हविष) प्रदान करता है वह स्वास्थ्य्-सम्पत्ति प्राप्त करता है, सुन्दर संतति वाला होता है तथा वह देवों के सोम-पान में भी सम्मिलित होता है (यह उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो दवाश्त् (रेवत्स वयोदघते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ।। ऋ0सं0 X 77/7) ।

अपने याजकों का आह्वान सुनकर मरुद्गण यज्ञ में पहुंचकर उन्हें अनुगृहीत करते हैं। यज्ञों की ओर क्षिप्रगति से आते हुए मरुतों की

ऋषिगृत्समद ने हंसो से उपमा देते हुए कहा है, मधु- (सोम) के आनन्द के लिए समान मन वाले मरुद्गण अपने निवास स्थान की ओर जाते हुये हंसों के समान (प्रतीत होते हैं) । ऋषि विश्वामित्र ने भी मरुतों को यज्ञ में, विदथों में जाने वाले धीर (गन्तारा यज्ञं विदधेषु धीराः ऋ0सं0 **III** 26/6) कहा है। ऋषि श्याश्व आत्रेय का कहना है कि (मरुतों) का विस्तार आने वाले जाने वाले, प्रवेश करने वाले तथा अनुसरण करते हैं (आपकयो विपथमो न्तस्यथा अनुयथाः । ऐतिभर्महृय नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते (ऋ0सं0 **VI** 52/10)। पुनः ऋषि श्चाश्व आत्रेय कहते हैं, पौरुष युक्त मरुद्गण यज्ञ की विशाल सभा में प्रयत्नशील होते हैं (अन्तमंहे विदथे येतिरे नरः (ऋ0सं0 **VI** 59/2) ।

ऋक्संहिता के किन्हीं परवर्ती सूक्तों विशेषतः ऋतुयाग सम्बन्धी सूक्तों में मरुतों को पोते नामक ऋत्विक् द्वारा साम-ग्रहण करने के लिए कहा गया है। ऋषि मेघातिथि काण्व कहते हैं हे मरुतों! पोतृ से कृते के साथ सोम-पान कीजिए तथा यज्ञकों पवित्र कीजिये (मरुतः पिबत तुलना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ऋ0सं0 **I** 15/2) यही बात ऋषि गृत्समद इन शब्दों में कहते हैं हे द्युलोक के नरो (मरुतों!) पोतृ से सोम पीजिये (पोत्रादा सोम पिबता दिवो नरः ऋ0सं0 **II** 36/2) । अथर्ववेद संहिता में भी एक मंत्र (2/1) में भी यही बात कहीं गयी है। इस मंत्र के ऋषि मेघातिथि काण्व अथवा गृत्समद कहे गये हैं जो कि ऋंकसंहिता से ऊपर उद्घृत दोनों मंत्रों के ऋषि हैं।

यज्ञों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने कारण ही ऋषि गृत्समद ने मरुतों को यज्ञों से सम्बद्ध कहा है । यहां बहुवचन में यज्ञ पद संभवतः संकेत करता है कि मरुतों का सम्बन्ध यज्ञ-संस्था के अन्तर्गत अनेक यागों से है । परन्तु सोम से मरुद्गण विशेषतः आप्यायित होते हैं। ऋषि गौतम राहुगण का कहना है कि सोम के मद में मरुद्गण ने अद्भूत कार्य किये (मदे सोमस्य रण्यावि चक्रिरे ऋ0स0 **II** 85/10) । ऋषि वशिष्ठ कहते हैं कि मरुद्गण सोम-युक्त मघु के प्रति अवहेलना न करते हुए यहां (हमारे यज्ञ में) स्वाहाकार के साथ आनंत्रित होवें (ऋ0सं0 **VII** 59/6) ।

मरुद्गण अपने यजमानों के मित्र और रक्षक हैं, इसलिए आर्यजन कृतज्ञतापूर्वक इन्हें हविष् प्रदान करते हैं। ऋषि नोधा गौतम ने मरुतों को मनुष्य के मित्र (नृषाचः) विशेषण से विभूषित किया है । ऋषि अगस्त्य मरुतों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं ये रुद्र (मरुद्गण) नमस्कार करने वाले के पास रक्षा के साथ पहुंचते हैं, अपनी शक्ति से शक्तिमान ये (मरुद्गण) हविष् प्रदान करने वाले को क्लेश नहीं देते हैं। मरुतों की सहायता किस रूप में प्राप्त होती है इसकी ओर संकेत करते हुए ऋषि अगस्त्य कहते हैं, जिस हविष् प्रदान करने वाले यजमान को ये रक्षक (मरुद्गण) धन की समृद्धि प्रदान करते हैं उसके लिए ये मित्रों के समान सुख देने वाले मरुद्गण लोकों को जल-वर्जण द्वारा सींच देते हैं, (यस्मा ऊमोसा अमृता अरासत रायश्पोष व हविषा ददाशुषे उक्षन्त्स्मे मरुताहिता हव पुरु रजांसिपयसा मयोभुवः ।। ऋ0सं0 **II** 166/3) ।

मरुद्गण क्षत्रियों, हिसाओं से भी रक्षा करते हैं, इस ओर संकेत करते हुए ऋषि श्याश्व आत्रेय कहते हैं, हम उन सब मरुतों को सशक्त रूप से स्तुति और यज्ञ निवेदित करते हैं जो मनुष्यों की पीढ़ी दर पीढ़ी रक्षा करते हैं, मनुष्य को हिंसा से बचाते हैं (मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च भृष्णुया । विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः (ऋ0सं0 **VI** 52/4) और इसलिए ये तत्काल सहायता करने वाले सधूतयः (ऋ0सं0 **VI** 54/15) कहे गये हैं बल और पराक्रम के प्रतीक मरुद्गण अपने यजमान को युद्ध में भी सहायता करते हैं इस ओर संकेत करते हुए ऋषि भरद्वाज कहते हैं मरुतों ! जिसकी तुम युद्ध में रक्षा करते हो, उसको न कोई घेर सकता है और न अभिभूत कर सकता है, जिसके तुम कुल, संतति पशुओं तथा जलों की रक्षा करते हो, वह सायंकाल होते (शत्रुके) दुर्ग को तोड़ सकता है (नारयवतां न तरुता न्वस्ति मरुतों यमवथ वाजसातो तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रज दतां पार्ये अधर्धो ।। ऋ0सं0 **VI** 66/8) ।

अथर्वसंहिता में भी एक मंत्र में कहा गया है कि हे मरुतों यह जो शत्रुओं की सेना है, जो हम पर स्पर्धा करती है वेग से आ रही है, उस सेना को घबराहट करने वाले तमसाव्र से वेध लो जिससे इनमें से कोई किसी को न जान सकें

उपयुक्त समस्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक संहिताओं में मरुतों का स्थाना इन्द्रादि अन्य प्रधान देवों के तुल्य ही है, परन्तु परवर्ती ब्राह्मण साहित्य में मरुतों को देवों की प्रजा (देवीविंशः)

कहकर इनका स्थान गौण कर दिया गया है । ऋक्संहिता में ऋषि श्याश्वमग्त्रेय में मरुता विशः (ऋ0सं0 56/1) अर्थात् मरुतों की प्रजा (या अधिक प्रसङ्गानुकूल तो मरुतों का समूह कहना होगा) की चर्चा की है। इसी प्रकार ऋषि कण्व घोर ने एक ऋक् में कहा है कि है देव मरुतों। आप समस्त प्रजा के साथ मदोन्मतों जैसे जहां चाहते हो चले जाते हो (प्रो आरत मरुतों दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ।। ऋ0सं0 **II** 39/5) । इसमें भी मरुतों की प्रजा की ओर संकेत है जो उनकी प्रधानता का सूचक है। अथर्ववेद संहिता में एक इन्द्र-सुक्त में देवीविंशः (अथर्व सं0 **IX** 4/9) की चर्चा हुयी है, परन्तु यहां यह स्पष्ट नहीं है कि इससे मरुतों की ओर संकेत है। इसी प्रकार देवीर्विशः मेत्रायणी संहिता तथा काठक संहिता में भी प्रयुक्त हुआ है, परन्तु यहां भी यह मरुतों की ओर संकेत नहीं करता। केवल शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता में स्पष्टतः यह कहा गया है कि देवी प्रजायें मरुद्गण इन्द्र के अनुवर्ती हुये (इन्द्रं देवीर्विशो मरुतो नुवत्मानो भवन । वैदिक देव-गण के बीच मरुतों की स्थिति के क्रमिक विकास का यह अन्तिम सोपान प्रतीत होता है।

## चतुर्थ अध्याय

## ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुद्गण तथा अन्य देव

# ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुद्गण तथा अन्य देव

कालक्रम तथा वैचारिक विकास के क्रम की दृष्टि से संहिताओं के पश्चात् वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण नामक ग्रन्थों का स्थान है। ग्रन्थ के अर्थ में ब्राह्मण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग शतपथ ब्राह्मण के 13वें काण्ड में मिलता है, जहाँ 'तस्योक्तं ब्राह्मणम्' वाक्य का अनेकशः प्रयोग हुआ है। इसके पूर्ववर्ती काण्डों में इसी अर्थ में 'तस्योक्तो बन्धुः' वाक्य का प्रयोग हुआ है। बन्धु शब्द का अर्थ 'सम्बन्ध' में, अतः बन्धु और ब्राह्मण शब्द का इन प्रसंगों में अर्थ होगा मंत्र का याज्ञिक कर्मकाण्ड से सम्बन्ध । इस प्रकार के सम्बन्ध विवेचनात्मक संदर्भ में मूलतः कर्मकाण्ड के भिन्न-भिन्न अंशों के विषय हैं। ये संदर्भ मनीषि ऋषियों के चिन्तन के बिखरे हुये अंश रहे होगें, जैसा कि 'तस्योक्तं ब्राह्मणम्' वाक्य के एकवचन के प्रयोग से प्रतीत होता है। कलान्तर में विभिन्न परिवारों ने अपनी परम्परा में चले आते हुये ऐसे अंशों को संकलित कर लिया होगा और ये संकलित ग्रन्थ ही ब्राह्मण पद-वाच्य हो गये ।

यों तो कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं-तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक तथा कठ-कपिष्ठल में मंत्र-भाग के साथ ही साथ ऐसे व्याख्यात्मक अंश संकलित है जो ब्राह्मण भाग ही हैं और संभवतः ये अंश ब्राह्मण-विभाग के प्राचीनतम निदर्शन है, परन्तु बाद में प्रत्येक संहिता के साथ स्वतंत्र ब्राह्मण

ग्रन्थों की परिपाटी देखते हुये कृष्ण यजुर्वेद का भी एक स्वतंत्र ब्राह्मणग्रन्थ तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] के नाम से बना गया। यही बात अथर्व संहिता के गोपथब्राह्मण के साथ भी है जो ब्राह्मण साहित्य का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है।

प्राचीन ब्राह्मणग्रन्थों में ऋग्वेद्ध-संहिता के दो ब्राह्मणों ऐतरेय तथा कौषीतकि अथवा शांखायन भी पर्याप्त प्राचीन हैं। शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण यथा-कालक्रम की दृष्टि से पर्याप्त परवर्ती काल का है। परन्तु विस्तार एवम् सामग्री की दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण ब्राह्मणग्रन्थ है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में, जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, मंत्र और याज्ञिक कर्मकाण्ड के सम्बन्ध की व्याख्या की गयी है। इसी व्याख्या के प्रसंग में ये ग्रन्थ मंत्र के पदों, कर्मकाण्ड तथा देवता की प्रतीकात्मक व्याख्या के साथ-साथ आख्यानों का भी सहारा लेते हैं। ये आख्यान देवता की कल्पना के विकास पर भी हैं, साथ ही इन ग्रन्थों में देवताओं के सम्बन्ध में अनेक ऐसी चर्चायें भी मिलती हैं, जो किसी देवता के सम्बन्ध में विद्यमान धारणाओं के क्रमिक विकास को स्पष्ट कर देती हैं।

प्रस्तुत अध्याय में मरुतों के साथ अन्य देवताओं के सम्बन्ध में ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध वाक्यों तथा आख्यानों के आधारपर इनके स्वरुप-विकास पर विचार किया जायेगा। अनावश्यक विस्तार से बचने के

---

1 तै0ब्रा0 के विषय में मैकडोनेल का मत है कि यह प्राचीनतम ब्राह्मणों में से है।

लिये यहाँ केवल उन्हीं प्रसंगों की चर्चा की जायेगी जिनमें ब्राह्मण-ग्रन्थों ने या तो कुछ परिवर्तन किया है अथवा नयी धारणाओं को जन्म दिया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में संख्याधिक्य के कारण और सम्राट इन्द्र के साथ मरुद्गण का सम्बन्ध होने से इनको प्रायः 'विशः' अर्थात् प्रजा, कृषक अथवा वैश्य कहा गया है (ऐ0ब्रा0 1/2/3, कौ0ब्रा0 7/8, श0ब्रा0 2/5/1/12 तथा 9/3/1/3) तैत्तिरीय (2/2/5) में कहा गया है कि मरुतों को सात कपालों में यज्ञ-भाग देना चाहिये क्योंकि इनके सात गण है (मारुतः सप्तकपालों भवति । सप्तगणा वै मरुतः । गणशः एवास्मै सजातानवरुन्धे)

मरुतों की संख्या के विषय में वैदिक संहिताओं में संकेत किया गया है। परन्तु मुख्यतः याज्ञिक क्रिया से सम्बद्ध ब्राह्मणग्रन्थों में उनकी संख्या निश्चित रूप से सात अथवा इक्कीस अथवा सात-सात के सात गण कह दी गयी है।

सात अथवा सात के गुणक के रूप में मरुतों की संख्या के निर्धारण का आधार ऋषि श्यावाश्व आत्रेय की यह ऋक् प्रतीत होती है, सप्त में सात शाकिन एकमेकाशता ददुः। यमुनायामधिश्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अशराव्यंमृजे ।। (ऋ0सं0 VI 51/17) (बलशाली मरुतों के सात-सात के सात गणों ने मुझे एक-एक करके सैकड़ों का दान दिया, जिस घोड़ों और गायों वाले दान को मै यमुना के जल में मार्जित करता हूँ ।[1] परन्तु

1. श0ब्रा0 (9/3/1/8) में कहा गया है कि सप्त-सप्त से बहुसख्या का बोध होता है लेकिन इनकी सख्या सात ही है। ।

याज्ञिक कर्मकाण्ड में विशेषत: जहाँ देवता के निमित्त पुरोडास निवेदित करने के प्रसंग आते हैं वहाँ मरुतों के सम्बन्ध में सात की संख्या बड़ी सुविधाजनक प्रतीत हुयी और इसलिए उनके लिए सप्तकपालपुरोडाश का विधान किया गया है।[1] कहा गया है कि पशुओं के प्रजनन के लिए सप्त सप्त कपाल पुरोडाश विहित है। मरुत् क्योंकि सात है सप्ताक्षरों से सप्तपदी शक्वरी छन्द को जीता और सात ही अक्षरों से उणिक छन्द को भी जीता। तिथियों में मरुतों के हिस्सें में सप्तमी तिथि रखी गयी है। वाजसनेयि संहिता में तो सातों मरुतों के नाम भी गिना दिये गये है, जो इस प्रकार है, उग्रश्च, भीमश्च, ध्वान्तश्च, धुनिश्च। सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिप: स्वाहों (वा0सं0 17/86, 39/7) । स्पष्ट है कि यह नामकरण मरुतों की उग्रता एवं भयंकर ध्वनि उत्पन्न करते हुए वेग के अनुरुप ही रखे गये हैं। मरुतों के लिए सात संख्या निर्धारित करने का एक प्रमुख कारण यह भी प्रतीत होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों के चिन्तन में शरीर में सात प्राणों की कल्पना की गयी है। प्राण का स्थूल रूप ही वायु है अत: इस प्रकार वायु प्राण का प्रतिनिधि हुआ और अधिक संख्या में कल्पना किए जाने के कारण इन प्राणों की अधिष्ठान् देवता वायु के बहुवचनान्तरूप मरुत: को माना गया। फलत: मरुतों की सात संख्या निश्चित हो गयी है।

---

1 गणस्तास्मान्मारूत: सप्त कपाल: पुरोडाशो भवति (श0ब्रा0 2/5/1/13) ।

बहुत थोड़े से स्थलों पर मरुतों की संख्या इक्कीस कहीं गयी है । मरुतों को गण मान लेने के कारण सात-सात के अनेक दलों की कल्पना स्वाभाविक हो गयी और फिर एकविंशति पशुओं की समृद्धि के लिए माना गया तथा पशुओं का सम्बन्ध मरुतों के साथ बताया गया, इसलिए यह इक्कीस संख्या संगत हुयी।

उपर्युक्त कारण से ही सात-सात के सात जल मानलिए गये और जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि ऋक् संहिता **VI** 5/17 में तो सात-सात कहने से इनकी असंख्यता ही अभिप्रेत थी परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में यह वस्तुतः निश्चित संख्या मान ली गयी।

ऋक्संहिता, अथर्वसंहिता तथा यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं के मंत्र-भाग में मरुतों को पृश्निमातरः अर्थात् पृश्नि जिनकी माता है कहा गया है। यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं के ब्राह्मण सदृश भागों तथा अन्य ब्राह्मणों में भी प्रायः मरुतों को पृश्नि से उत्पन्न बताया गया है, और उन्हें पृश्नयः कहा गया है।[1] पृश्नि को कहीं-कहीं पृथ्वी से सम्बद्ध कर मरुतों का भी पृथ्वी के साथ सम्बन्ध बताया गया है और पृश्नि को प्रायः गाय के रूप में कल्पित किया गया है।[2] इसीलिए अश्वमेध में बिन्दियों वाले पशु (पृश्नयः) मरुतों के लिए रखे गये हैं।[3] इसी प्रकार वाजपेय में भी मरुतों के लिए एक चितकबरी वन्ध्यागाय दी जाती है जिसे शतपथ ब्राह्मण में

---

1 वा०स० मैत्रा० 3/13/12 ।

2 'पृथिव्या मरूतास्जाता' (कौ०स० 10/11) ।

3 मैत्रा० 3/13/5, 'ऊर्ध्वपृश्निस्ते मारूता:' ।

पृथिवी का प्रतीक कहा गया है।[1] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि यहाँ पृश्नि से आँधी-तूफान से पहले धूलि-धूसरित पृथ्वी मरुतों की माता अर्थात् उद्भव-स्थान के रूप में मानी गयी है। कहीं-कहीं पर मरुतों को पृश्नि के दूध से उत्पन्न कहा गया है।[2]

इस कल्पना में संभवतः मरुतों के वर्षा करने वाले रूप की ओर संकेत है क्योंकि ये पृश्नि के पयस् (दूध) से उत्पन्न है। अतः वे पृथ्वी पर पयस् (पानी) बरसाने में समर्थ हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुतों के पिता के सम्बन्ध में प्रायः चर्चा नही हुयी है यद्यपि रुद्र के साथ इनके घनिष्ठ सम्बन्ध की ओर अनेक संकेत हैं। परन्तु यजुर्वेद संहिता के मंत्र में इनकों रुद्रियासः कहा गया है, और एक मंत्र में रुद्र को 'मरुतां पितर्' कहा गया है।

यजुर्वेद संहिता के ब्राह्मणसदृशभागों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुतों के एक पुत्र ऊर्ध्वनमस् की चर्चा हुयी है। पशु याग में पशु की वसा (चर्बी) को अलग करने के लिए प्रयुक्त त्रिशूल एवं एकशूला वसातपर्णियों को अग्नि में समर्पित करते हुए मंत्र पढ़ा जाता है, स्वाहोहवनंमसं मारुतं गच्छतम् अर्थात् (हे त्रिशुला और एक शुला मरुतों के पुत्र ऊर्ध्वनमस् के पास जाओ)। तैत्तिरीयसंहिता के ब्राह्मण सदृश भाग में इस मंत्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि ऊर्ध्वनमस जो मरुतों का पुत्र है, देवों के पशु भाग

---

1 शत०ब्रा० 4/1/3/3 ।

2 'पृश्नियै वे पयशो मरूतो जाताः'

में वपात्रपणियों को चुभाता था, इसीलिए इन शुलों को ऊर्ध्वनमस् के द्वारा देवों तक पहुँचाया जाता है।

कीथ महोदय ऊर्ध्वनमस् से विद्युत् जो मेघों के ऊपर रहती है अथवा संभवतः वायु समझते हैं । ऊर्ध्वनमस् से वायु का ही अर्थ लिया जाता है। परन्तु वपात्रपणी के शुलों को देखते हुए विद्युत अर्थ ही ठीक लगता है और आँधी-तूफान की अभिमानी देवता मरुतों के पुत्र के रूप में विद्युत् की कल्पना संभाव्य हैं । यह इससे भी समर्थित है कि अनेक स्थलों पर मरुतों के पुत्र के रूप में द्युतान का उल्लेख हुआ है।[1] पंचविंश-ब्राह्मण में मारुत द्युतान को व्रात्यों का गृहपति कहा गया है।[2] द्युतान शब्द का अर्थ द्यूत से निष्पन्न होने के कारण चमकाने वाला अर्थात् विद्युत प्रतीत होता है, यद्यपि शतपथ ब्राह्मण में वायु को द्युतान कहा गया है।[3]

यज्ञ में कुशों का एक गुच्छा जिसे प्रस्तर कहते है बनाकर रखा जाता है। इसे द्युतावत कहते हैं और इसमें से कुश का एक टुकड़ा तोड़कर उसे पूर्व की ओर फेंकते हुए मंत्र पढ़ा जाता है- तुम मरुतों की पृषती अर्थात् चित्तीदार घोड़िया हो, तुम पृश्नि वशां अर्थात् चितकबरी गाय बनकर द्युलोक को जाओ और हमारे लिए वृष्टि लाओं । इस मंत्र से प्रतीत

---

1 मैत्रा० 2/7/10 ।

2 पच0 18/1/31 य एष द्युतानों मारूतः ।

3 शत0ब्रा0 3/6/1/16 ।

होता है कि चितकबरी घोड़िया अथवा गायें मरुतों के वाहन के रूप में कल्पित की गयी थीं ।

इन्द्र के अनुचरों के रूप में मरुद्गण वैदिक संहिताओं में ही प्रतिष्ठित हो चुके थे। परन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों में मरुद्गण को देवों की प्रजा के रूप में कल्पित किया गया है। ब्राह्मणों तथा कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं के ब्राह्मण जैसे भागों में अनेक बार इस प्रकार के वाक्य दुहराये गये हैं कि- विशों य मरुतों देव विश:[1], मरुतों व देवानां विश:[2] देवीर्विशो मरुत: अथवा देवानां मरुतों विश[3]। अनेक स्थलों पर मरुतों को केवल मरुतों विस:[4] कह दिया गया है। विश: के साथ मरुतों के समीकरण के फलस्वरुप वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत वैश्यवर्ग मरुतों से सम्बद्ध मान लिये गये। पुरुषमेध में मरुतों के लिये वैश्य रुपी पशु निर्धारित किया गया है क्योंकि वैश्य मरुतों का है।[5]

ऋक्संहिता में बहुसंख्यक मरुतों का विश: मरुताम् कहकर आह्वान किया गया था। ब्राह्मण-काल तक आते-आते यह बहुसंख्या-वाचक आख्यान विशो मरुत: में बदल गयी । ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवों की प्रजा होनी चाहिये। जब देवों की प्रजा होगी तो मनुष्य की भी होगी। मरुद्गण देवों की प्रजा है। इसका कारण मरुतों की बहुसंख्या ही

---

1 जै0ब्रा0 2/175, शत0ब्रा0 2/5/1/12 ।
2 ऐ0ब्रा0 1/9 ।
3 शत0 ब्र0 4/5/2/17 आदि ।
4 तै0ब्रा0 2/6/18/3 ।
5 तै0ब्रा0 3/4/4/1 मरूद्भ्योवैश्यम् ।

प्रतीत होती है। साथ ही मरुतों के महत्त्व का घट जाना भी इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण हो सकता है। जैसे समाज में राजा एक ही होता है और पुरोहित भी संख्या में अधिक नहीं होते विशः ही बहुसंख्यक होते हैं, ऐसे ही इन्द्र देवों में राजा अथवा क्षत्रिय हुये, ब्राह्मणस्पति अथवा वृहस्पति पुरोहित अथवा ब्राह्मण हुये और बहुसंख्यक मरुद्गण विशः में गिने गये। देवों में क्षत्र का अधिकार जब शक्ति के प्रतीक (शचीपति) इन्द्र को मिल गया तो उसके अनुचर मरुद्गण स्वभावतः विशः के रूप में कल्पित हुए।[1] इस रूप में संख्या में अधिक होने के कारण विश्वेदेवाः का भी उल्लेख हुआ है। वर्ण व्यवस्था में जैसे अन्न उत्पन्न करना विशः का काम है, ऐसे ही देवों में मरुद्गण अन्न से भी समीकृत हो गये ।[2]

इन्द्र के अनुचर बन जाने से मरुतों के महत्त्व में ह्रास की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी थी, विशः के रूप में मान लिया जाना उसमें एक ओर अगला डग था। याज्ञिक प्रक्रिया पर भी इसका प्रभाव पड़ा । सोम-याग के अन्तिम चरण में मरुतों के लिये वशा-याग होता है। इस याग को स्वाहाकृति के बिना ही करने को कहा गया है, क्योंकि मरुद्गण देवों के विशः हैं और विशः तो अहुताद (अहुत हविष् लाने वाले) ही होते हैं।[3] अनेक याज्ञिक संदर्भो में मरुतों के साथ वैसा ही व्यवहार किया गया है, जैसा कि अन्य देवों के साथ और उनके लिये स्वाहाकृति के साथ हविष् का विधान भी मिलता है । अतः सोमयाग का उपर्युक्त प्रसंग मरुतों के क्षीण होते महत्त्व का ही परिचायक है।

---

1 शत0ब्रा0 3/9/1/18 क्षत्र वा इन्द्रो विशाविश्वेदेवा विशो वा मरूतों .. ।

2 शत0 ब्रा0 5/5/3/2 ।

3 शत0 ब्रा0 4/5/2/17 ।

ऋक्संहिता में मरुतों के लिये क्रीडाः अथवा क्रीडयः[1] (खिलाड़ी) सान्तपनाः[2] (तपाने वाले) तथा गृहमधासः[3] (गृह्य यागों को स्वीकार करने वाले) विशेषण प्रयुक्त हुये है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में मरुतः क्रीडिनः, मरुतः सान्तपनाः तथा मरुतः गृहमधिनः- ये मरुतों के विशिष्ठ रूप विशिष्ट काल और हविष् से सम्बद्ध हो गये हैं और इनके निमित्त दृष्टियों की भी कल्पना की गयी है। इनके अतिरिक्त मरुतः एनोमुचः, मरुतः स्वतवसः, मरुतः स्वापयः, मरुतः पश्चात्सदसः का भी उल्लेख हुआ है।

खिलाड़ी मरुत् संभवतः मरुतों के प्रातःकालीन रूप के प्रतिनिधि हैं, क्योंकि इनके लिए उगते हुये सूर्य के साथ सप्त-कपाल पुरोडाश निवेदित करने का विधान किया गया है। अन्य प्रसंग में क्रीडी मरुतों के लिये संसृष्ट (सहोत्पन्न) बकरे निवेदित करने का विधान किया गया है। इससे मरुतों की समानता द्योतित होती है। मरुतों के क्रीडित्व की व्याख्या तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक आख्यान द्वारा इस प्रकार की गयी है- वृत्र को मार कर इन्द्र, यह सोचकर कि वह निशाना चूक गया है, बहुत दूर चला गया, उसने कहा कि (वृत्र मारा गया है) यह कौन जानेगा, मरुद्गण बोले हम वर मांगते है, हम (वृत्र मर गया या नहीं यह) जान लेंगे, पहली हविष् हमारे लिये निरुपित की जाये, वे (मरुद्गण) इस (वृत्र) के ऊपर क्रीड़ा करने लगे और इस प्रकार जान गये कि वह मर गया है, यही क्रीडियों

---

1. ऋ0स0 I 66/2 ।
2 ऋ0स0 V159/9 ।
3 ऋ0स0 V 59/10 ।

(मरुतों) का क्रीडित्व है।[1] शतपथ- ब्राह्मण में यह आख्यान इस संक्षिप्त रूप में मिलता है वृत्र को मारने के लिये आये हुये इन्द्र के चारों ओर क्रीडी मरुद्गण उस (इन्द्र) की प्रशंसा करते हुये क्रीड़ा करने लगे।[2] काठक संहिता, मैत्रायिणी-संहिता तथा जैमिनीय-ब्राह्मण[3] में भी इस प्रकार की व्याख्या की गयी है। काठक संहिता में इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह कही गयी है कि इन्द्र आदित्य है और खिलाड़ी मरुद्गण उसकी रश्मिया हैं।

मरुतः सान्तपनाः (तपाने वाले मरुत्) संभवतः मरुतों के दोपहर के तपाने वाले उग्र रूप के प्रतीक हैं। इनके लिये दोपहर में चरु (भात) निवेदित करने का विधान है।[4] दोपहर में इनका भजन करने का कारण बताते हुये कहा गया है कि मरुतः सान्तपनाः का जो दोपहर में यजन किया जाता है, उसका कारण यह है कि दोपहर में तपन होती है, इसलिये दोपहर में मरुतः सान्तपनाः का यजन किया जाता है। यज्ञ में सांतपन-मरुतों के लिये सवात्य (एक माता से उत्पन्न) बकरे निवेदित करने के लिये कहा गया है। इनके सांतपन नाम की व्याख्या तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस आख्यान द्वारा की गयी है- उन असुरो ने पराजित होकर द्यावापृथिवी का आश्रय लिया, उन देवों ने सांतपन मरुतों के लिये चरु निवेदित किया और

---

1 तै०ब्रा० 1/6/7/59 ।

2 शत०ब्रा० 2/5/3/20 ।

3 जै०ब्रा० 3/32 ।

4. शत० ब्रा० 2/5/3/3 ।

इसके द्वारा उन (असुरो कों) द्यावापृथिवी में दोनों तरफ से तपा दिया। मैत्रायणी संहिता में इनके सांतपन नाम का कारण इनके द्वारा वृत्र को तपाया जाना बताया गया है।[1] शतपथ ब्राह्मण में भी यही बात यों कहीं गयी है- सांतपन मरुतों ने दोपहर में वृत्र को संतप्त किया, संतप्त हुआ वह हाँफता हुआ लुढ़क पड़ा।[2] स्पष्ट है कि यह मरुतों (वायुओं) का दोपहर का झुलसाने वाला रूप है।

मरुद्गण की उपाधि 'मरुतः गृहमेधिन':- (गृह्य यज्ञो द्वारा यजनीय मरुद्गण) दैनिक घरेलू जीवन में मरुतों के महत्त्वपूर्ण स्थान के स्मारक हैं। इनके लिये सांयकाल सब गायों के दूध में पकाये हुये चरु का विधान किया गया है।[3] इससे इनके गायों के रक्षक रूप पर बल दिया गया प्रतीत होता है। मेध में इनके लिये वष्किह (चिरप्रसुत) पशुओं का विधान है।[4] काठक-संहिता में मरुतों को गृहमेध कहा है और इनके सम्बन्ध में यह आख्यान दिया है कि अगले दिन वृत्र को मारने की तैयारी में देवों ने भात पकाया और इसका हवन मरुतों के लिये किया, (क्योंकि) मरुद्गण गृहमेध पशु है।

---

1 मैत्रा0 1/10/14/1 ।

2 शत0 ब्रा0 2/5/3/3 ।

3 तै0बा0 1/8/4/1 मरूद्भ्यो गृहमेधिभ्यः सर्वासा दुग्ध साय चरूम् ।

4 मैत्रा0 3/13/14 ।

मरुतः स्वतवसः (स्वतंत्र-शक्ति वाले मरुत्) का उल्लेख भी साकमेध के प्रसंग में मिलता है, उनके लिये अनुसृष्ट (अनुक्रम से एक के बाद एक उत्पन्न) पशु निवेदित करने का विधान किया गया है। मरुतः स्वतवसः को भयंकर बताया गया है और कहा गया है कि इनका यजन करने से भैषज्य (स्वास्थ्य-प्राप्ति) होता है।

मरुतः एनोमुचः पाप से मुक्त कराने वाले मरुद्गण के लिये अवश्मेध में मृगारेष्टियों के अंतर्गत सप्त कपाल पुरोडाश निवेदित करने का विधान मिलता है।[1]

मरुतः स्वापयः (प्रियजन मरुत्) के बारे में ऐतरेय ब्राह्मण में एक आख्यान दिया गया है कि जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तो देवों ने समझा कि वह मार न सका और वे भाग गये, केवल मरुत् जो उसके प्रियजन (स्वापयः) हैं, न भागे, मरुतः स्वापयः प्राण हैं, प्राणों ने इन्द्र को न छोड़ा।[2] इस प्रकार मरुतः स्वापयः इन्द्र के प्राण सदृश प्रियजन हैं।

मरुतः अभीष्टयः (इच्छित वस्तु देने वाले मरुत्) का यजन विविध पशुओं द्वारा किया जाना चाहिये, ऐसा जैमिनीय ब्राह्मण में उल्लेख हुआ है।[3]

मरुतों के ये विविध रूप याज्ञिक कर्मकाण्ड में मरुतों के विस्तृत प्रभाव के द्योतक हैं।

---

1 मैत्रा0 2/13/14, मरूदभ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान्

2 ऐ0ब्रा0 7/5 ।

3 जै0ब्रा0 2/177 ।

कृष्ण-यजुर्वेद की संहिताओं के ब्राह्मण-सदृश भागों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुतों के जिस विशिष्ट गुण का बार-बार उल्लेख हुआ है, वह है उनकी ओजस्विता और इसके कारण उनकी त्वरित गति । मरुतों के ओजस् की प्रशंसा मुक्तकंठ से की गयी है। राजसूय के प्रसंग में राज्य के रथ को बन्धन मुक्त करते हुये जो हविष दी जाती है, वह मरुतों के ओजस् के लिये स्वाहाकृति के साथ दी जाती है।[1] शतपथ ब्राह्मण में रथों की मरुतों से समानता इस प्रकार प्रदर्शित की गयी है रथ में चार घोड़े हैं, पाँचवाँ रथ का ढाँचा और योद्धा तथा सारथी को मिलाकर सात होते हैं और मरुतों के सात-सात के गण हैं, इससे (मरुतों के ओजस् की प्रशंसा से) सम्पूर्ण रथ को प्रसन्न करता है, मरुद्गण प्रजाएं हैं, इससे प्रजाओं के ऊपर इसका राज्य प्रतिष्ठित होता है।[2]

इसी ओजस्विता के कारण वाजपेय में रथ की दौड़ में विजय के लिए मरुतों की प्रेरणा आवश्यक मानी गयी है और घोड़ों को सम्बोधित कर कहा गया है- वाजियों, वाज की ओर दौड़ों, मरुतों की प्रेरणा से जीतो।[3] राजसूय में भी रथ को जोतते हुए राजा कहता है- मै मरुतों की प्ररेणा से विजयी होऊं।[4] राज्याभिषेक के समय राजा के अभिषेचन के लिये प्रस्तुत जल को सम्बोधित कर कहा जाता है- हे जलों, तुम मरुतों का

---

1 मैत्रा0 2/6/12 ।

2. श0ब्रा0 2/4/3/17 ।

3. मैत्रा0 4/4/5 ।

4 तै0ब्रा0 1/7/5 ।

ओजस् हो।[1] इन ओजस्वी जलों से अभिषिक्त राजा ओजस्वी हो, ऐसी कामना इस क्रिया में अभिप्रेत है। राजा का अभिषेक करते हुये मंत्र पढ़ा जाता है- तुझे सोम की द्युति से, अग्नि के तेजस् से, सूर्य के रश्मि बचेस् से, इन्द्र के इन्द्रिय-बल से, मित्र-वरुण के वीर्य से, मरुतों के ओजस् से अभिषिक्त करता हूं।[2] कहीं- कहीं ओजस् के अतिरिक्त मरुतों के बल की भी प्रशंसा की गयी है[3] ।

इसी ओजस्विता के कारण मरुद्गण देव-सेनाओं का नेतृत्व करते हैं।[4] और ये देवों के अपराजित आयतन कहे गये हैं।[5]

पिछले अध्याय में हम देख चुके है कि वैदिक संहिताओं में मरुद्गण वर्षा से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे हैं और वर्षा इनका प्रमुख कार्य रहा है। वेद के ब्राह्मण-भाग में भी मरुतों के इस कार्य की पर्याप्त चर्चा हुयी है, यहां तक कि वर्षा पर उनका अधिकार बताया गया है।[6] इसीलिये मरुतों से प्रार्थना की गयी है कि वे बादल को बरसायें। वर्षा के लिये कारीविष्ट नामक एक याग किया जाता है, जिसमें काला वस्त्र धारण

---

1 मैत्रा0 2/6/7 ।
2 तै0स0 2/8/14/1 ।
3 मैत्रा0 2/6/12 'मरूता बलाय स्वाहा' ।
4 तै0स0 4/6/4/3 ।
5 तै0स0 1/6/4/3 मरूतों वै देवानामपराजितमायतनम् ।
6 श0ब्रा0 5/4/2/5 ।

किया जाता है, इस काले वस्त्र को सम्बोधित कर कहा जाता है- (हे वस्त्र) तुम मरुतों के हो, मरुतों के ओजस हो, जल धारा को भेद दो (भेद कर हमारी ओर बहाद्रो)[1] दर्शपूर्ण मास याग में कुशाओं के गुच्छे (जिसे प्रस्तर कहते हैं) से एक तिनका तोड़कर पूर्व की ओर फेंकते हुये कहा जाता है- तुम मरुतों की चितकबरी घोड़िया हो, द्युलोक को जाओ, हमारे लिये वृष्टि लाओं।[2] वृष्टि प्रदान करने के कारण संभवतः मरुतों को जल अथवा जल में आश्रित कहा गया है।[3]

मरुतों को अनेक स्थलों पर पशु कहा गया है। (पशवो मरुतः) इसका कारण संभवतः यह है कि मरुतों को पशुओं पर अधिकार है। कहा गया है कि मरुतों ने पशुओं को जीता। मरुतों के लिये निवेदित सप्तकपाल पुरोडाश पशुओं को उत्पन्न करने वाला बताया गया है। जैसे रुद्र पशुपति हैं, इसी प्रकार रुद्र-पुत्र मरुतों का पशुओं पर अधिकार और फलतः उनका पशुओं से समीकरण संभाव्य है। मरुत्-पुत्र द्युतान का भी पशुओं से समीकरण किया गया है।

---

1 तै०स० 2/4/7/1 ।

2 तै०ब्रा० 3/3/9/4 ।

3 ऐ०ब्रा० 3/4 ।

जैमिनीय-ब्राह्मण में पशुओं की प्रजा से समीकरण किया गया है।[1] इससे मरुतों का पशुओं से समीकरण और भी स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि मरुद्‌गण देवों की प्रजा है।

शतपथ-ब्राह्मण में एक स्थान पर वैश्वानर अग्नि को सूर्य तथा मारुत् (गणों या पुराडाशों?) को उसकी रश्मियों से समीकृत किया गया है।[2] और यजुर्वेद संहिताओं में इन सात रश्मियों के प्रतीक मरुतों के ये नाम दिये गये हैं- शुक्रज्योति, चित्रज्योति, सत्यज्योति, ज्योतिष्मान्, शुक्र, तथा अर्थहा ।[3]

काठक-संहिता में एक स्थान पर इन्द्र को मरुतः और मरुतः को दिन की रश्मियाँ बताया गया है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में मरुतों के अश्वत्थ-वृक्ष पर स्थित होने की भी चर्चा हुयी है। माध्यन्दिन-सवन में मरुतों के लिये जो ऋतु ग्रहण होते हैं, वे अश्वत्थ वृक्ष की लकड़ी के बने होते थे। इस प्रसंग में शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि जब इन्द्र वृत्र को मारने चला तो मरुद्‌गण अश्वत्थ-वृक्ष पर जा बैठे, अतः उनके ग्रह अश्वत्थ के बने होने चाहिये, ऐसा कहा गया है ।

वाजपेय में जब यजमान यूप पर चढ़ जाता है, तब उसकी ओर लवण-भरी पोटलियां फेंकी जाती हैं । ये पोटलियां अश्वस्थ के पत्रों की

---

1 जै0ब्रा0 2/175 ।

2 श0ब्रा 9/3/1/25 ।

3. मैत्रा0 2/6/6 ।

होती है। इसका कारण बताते हुये कहा गया है कि वृत्र को मारने के समय जब इन्द्र ने मरुतों को पुकारा तो वे अश्वत्थ पर चढ़े हुये थे।[1]

राजसूय में राजा के अभिषेक के समय वैश्य राजा का अश्वत्थ की लकड़ी से बने पात्र से अभिषेक करता हैं। इस प्रसंग में भी कहा गया है कि उस पिछले अवसर पर इन्द्र में अश्वत्थ पर बैठ मरुतों को पुकारा था, इन्द्र राजा हैं और मरुद्गण वैश्य है।

अग्नि-चयन के प्रसंग में कहा गया है कि गर्भ का अधिपत्य मरुतों का हैं।[2] सोम-याग के अन्त में उदवसानीया इष्टि के बाद एक वशा (बन्ध्या गो) के आलभन की व्यवस्था है, परन्तु यदि यह गौ गर्भवती हो तो यह गर्भ मरुतों को स्वाहाकृति के बिना ही निवेदित कर दिया जाता है और इस प्रसंग में कहा गया है कि इस प्रकार इस गर्भ को मरुतों में स्थापित कर दिया जाता है।[3]

राजसूय के अन्त में प्रयुजा हवीषि के अन्तर्गत भी मरुतों के लिये विचित्र गर्भ पृषत्री के आलभन का विधान है और इस प्रसंग में कहा गया है कि मरुत् विशः (प्रजा) हैं, इस प्रकार वह इसको मरुतों का गर्भ बनाता है।

---

1 शत0 ब्रा0 5/2/1/17 ।

2 शत0 ब्रा0 8/4/2/8 ।

3 शत0 ब्रा0 4/5/2/9 ।

उपर्युक्त प्रसंगों से प्रतीत होता है कि मरुद्गण का गर्भ के साथ, संभवतः इसके रक्षक के रूप में, घनिष्ठ सम्बन्ध कल्पित किया गया था।

मरुतों को अन्तरिक्ष लोक का बताया गया है।[1] परन्तु इनकी दिशा के सम्बन्ध में विभिन्नता दिखायी देता है। एक स्थान पर इनकी दिशा प्रतीची बताई गयी है।[2] परन्तु अनेक स्थलों पर इनकी दिशा उदीची[3] अथवा उत्तर बताई गयी है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर मरुतों को दक्षिण दिशा में रखा गया है क्योंकि दक्षिण से ही मरुतों ने प्रजापति की सृष्टि का विनाश करने की सोची। स्पष्ट है कि मरुतों के घोर, विनाशकारी रुप को देखते हुये यह कल्पना की गयी है।

---

1 ऐ०ब्रा० 1/10 ।

2 मैत्रा० 1/5/4 ।

3. तै०स० 9/4/2/2, मैत्रा० 2/8/9, शा०ब्रा० 8/6/1/8 ।

# पंचम अध्याय

# आरण्यक, उपनिषद् तथा पुराणों में मरुतों तथा अन्य देवताओं का विवेचन

# आरण्यक, उपनिषद् तथा पुराणों में मरुतों तथा अन्य देवताओं का विवेचन

## आरण्यक ग्रन्थों में मरुद्गण तथा अन्य देव :-

वैदिक साहित्य की परम्परा में संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के बाद आरण्यकों की रचना हुई। ब्राह्मण साहित्य के बाद आरण्यक ग्रन्थ उनके पूरक के रूप में प्रस्तुत हुए। अनेक अरण्यक तो अपने ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग ही हैं। कई समालोचकों ने आरण्यकों को भी ब्राह्मणों की कोटि में स्थान दिया है। वस्तुतः कर्मकाण्डविषयक ग्रन्थ होने के कारण ब्राह्मणों और आरण्यकों में विशेष अन्तर नहीं है।

आचार्य सायण ने तैत्तिरीय तथा ऐतरेय आरण्यकों के भाष्य में आरण्यक का अर्थ किया है-जो अरण्य में पढ़ा या पढ़ाया जाय, उसे आरण्यक कहते हैं।[1]

ब्राह्मण ग्रन्थों की तरह आरण्यकों के भी मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड ही है। परन्तु दोनों के यज्ञीय कर्मकाण्डों में थोड़ा सा अन्तर है। ब्राह्मण गन्थों में मुख्यतः उन यज्ञों का वर्णन है, जिनका आयोजन

---

1 अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येव वाक्य प्रवक्ष्यते।।
(तैत्ति० आ० भा० श्लोक 6)
अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते। (ऐत०आ०)

गृहस्थों और राजाओं द्वारा किया जाता था, अतः उन यज्ञों में कर्मकाण्डों के लिए विस्तृत आयोजन किए गये। लेकिन वनों में रहने वाले वानप्रस्थियों और मुनियों के लिए सरल यज्ञों का विधान अरण्यों में किया गया। मंत्र-संहिताओं और ब्राह्मणों की ही भाँति आरण्यक ग्रन्थों की भी संख्या अधिक थी, किन्तु जिस प्रकार संहिताएँ और ब्राह्मण ग्रन्थ कुछ ही उपलब्ध हैं, उसी प्रकार आरण्यक भी केवल आठ ही प्राप्य हैं, जिनके नाम हैं: ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, बृहदारण्यक, जैमिनीयोपतिषदारण्यक और छांदोग्यारण्यक।

श्री सदाशिव वामन आप्टे ने अपने सुप्रसिद्ध 'संस्कृत-अंग्रेजी'-कोश में स्पष्ट किया है कि आरण्यक ग्रन्थ एक प्रकार से धार्मिक एवं दार्शनिक लेख है। आरण्यक, वानप्रस्थियों के कर्मकाण्ड-ग्रन्थ तो हैं ही, साथ ही उनमें देवता सम्बन्धी विवेचन तथा यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या का प्रतिपादन भी बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। उनमें कर्ममार्ग और ज्ञान-मार्ग दोनों का समन्वय है। मरुद्गण सम्बन्धी विवेचन भी प्राप्त होता है।

आरण्यक ग्रन्थों में देवताओं का स्वरूप वर्णन तथा तुलनात्मक विधान का सुन्दर समन्वय मिलता है। लेकिन बहुत कुछ ऋक् संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुरूप ही वर्णन प्राप्त होता है।

आरण्यक ग्रन्थों में रुद्र तथा मरुद्गण सम्बन्ध पर कोई अतिरिक्त विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है और न याज्ञिक कर्मकाण्ड में ही इनका साहचर्य दृष्टिगोचर होता है।

तैत्तिरीय आरण्यक में शतरुद्रीय होमविधि के प्रसंग में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह जो अग्नि है, वह रुद्र ही है (रुद्रों वा एव पदग्नेः)। चूंकि रुद्र देव मरुद्गण से अत्यधिक घनिष्ठ हैं अतएव इनका विवेचन एक साथ भी होता है। मरुद्गण के अग्नि के साथ तादात्म्य और विशेषतः वैद्युताग्नि के साथ तो बहुशः प्रदर्शित किया गया है।

आरण्यक ग्रन्थों में मरुद्गण के ओजस्विता और उग्रता का स्मरण किया गया है। इनका उदर नील तथा पृष्ठ लोहित बताया गया। वे नीलशिखण्ड से भी सम्बोधित है। उनका भयंकर विनाशकारी रूप ही अधिकाधिक भास्वर होता चला गया और वे ठगों, चोरों, डाकुओं आदि से भी सम्बद्ध हो गये। इनका जलाषभेषज रूप अवश्य स्थायी रूप से बना रहा और इसके साथ विनाशकारिता के प्रतिपक्ष को भी सम्बद्ध कर उनके शिव शंकर रूप का प्रस्फुटन हुआ। दूसरी ओर मरुद्गण वृष्टि कर्म के साथ सम्बद्ध होने से सोमपान के अधिकारी बने रहे और उनका लोकोपकारक रूप प्रकट हुआ।

जैमिनीयोपनिषदारण्यक में भी मरुतों को 'रुद्राः' नाम से स्मरण किया गया है (रुद्रा समजानताभिः)। ऐतरेयारण्यक में कहा गया है कि मरुद्गण

रुद्र के ही सहचर हैं अतएव रुद्र के बाद मरुद्गणों के स्मरण से अनेक कर्म समृद्ध होता है।

आरण्यक यज्ञ में भी मरुद्गण का सम्मानजनक स्थान बना रहा यद्यपि स्तर में गिरावट जारी था। अग्निस्तोम में भी वे माध्यंदिन सवन में, मरुत्वतीय सत्र में तथा तृतीय सवन के अग्निमारुतशस्त्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका बनाये रहे।

आरण्यक ग्रन्थों में मरुद्गण को वेश्वानर अग्नि का अनुगामी बताया गया है। कहा गया है कि वैश्वानर क्षत्रिय है और मरुद्गण वैश्य, जैसे वैश्य क्षत्रिय का अनुगमन करते हैं, ऐसे ही मरुद्गण वैश्वानर का अनुगमन करते हैं।

वायु का वेग आरण्यक ग्रन्थों में आख्यानों का विषय बना है। निनाद और वेग, ये दो गुण वायु तथा मरुद्गण में समानता के परिचायक हैं। अनेक स्थलों पर मरुतों को वायुओं के साथ (वायुभिः) कहा गया है।

ऐतरेयारण्यक में प्राप्त एक आख्यान के अनुसार सोम के प्रथम पान के विषय में देवगण एकमत न हुये, प्रत्येक ने इच्छा की पहले मै पीऊंगा, एकमत होने के लिये उन्होंने कहा, आओ, हम दौड़े।

देवताओं ने यह निश्चय किया कि हममे से जो दौड़ में जीते वही पहले सोम पीये। ऐसा ही हुआ तथा दौड़ते हुये उनमें पहले वायु आगे

निकल गया तब इन्द्र, मित्र और वरुण आदि। वायु देवों से सर्वाधिक वेगवान है तथा यही लक्षण मरुद्गण की भी है।

मरुद्गण का निनाद और गर्जन तो इनके स्वरूप का बहुत बड़ा बैशिष्ट्य है। घोर रूप, चमचमाते वस्त्र, वेगपूर्वक बढ़ते हुए मरुतों का निनाद सुनाई पड़ता है।

परन्तु आरण्यक ऋषि की दृष्टि में मरुद्गण वायु या वात का पर्याय नहीं है। वायु या इनकी स्वरूप-कल्पना का एक अंश मात्र है। ये इनके घोड़े हो सकते हैं, या इनको जन्म देने वाले अथवा इनसे जन्म पाने वालो हो सकते हैं, फिर भी मरुद्गण इनसे बहुत कुछ अधिक हैं। मरुतों के गर्जन की उपमा वायु के अतिरिक्त अग्नि और सोम के गर्जन से भी दी गयी है। वायु से अलग करने वाले मरुद्गणों के गुण है, इनका देदीप्यमान प्रकाशमय स्वरूप तथा वृष्टि लाने का इनका प्रमुख कार्य।

शांख्यायन आरण्यक में मरुद्गण को सर्वज्ञानी कहा गया है। आरण्यक ग्रन्थों में मरुद्गण को रुद्र, वायु तथा अग्नि का अनुगामी बनाने की भी कल्पना की गयी और इन देवों को मरुत्वान् विशेषण से कुछ स्थलों पर स्मरण किया गया। इन ग्रन्थों में भी ऋक् संहिता की तरह मरुद्गण इन्द्र के ऐसे घनिष्ठ अनुचर हो गये कि इनका सदा साथ ही कल्पना की जाती है।

एक स्थिति ऐसी लक्षित होता है, जब मरुद्गण इन्द्र के समकक्ष है और यदि 'मतुप्' प्रत्यय गौणता का परिचायक है तो इन्द्र मरुतों से अवर ही है, क्योंकि मरुतों के लिये 'इन्द्रवन्तः' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। कहा गया है कि हे सुन्दर दानशील मरुद्गण हमारे पास आयें, वेगवान इन्द्र! तुम उनके साथ होवों।

वस्तुतः इन्द्र-मरुत् प्रतिद्वन्द्विता, इसके समाधान और अन्ततः इन्द्र के प्राधान्य की स्थापना का रोचक इतिहास आरण्यक ग्रन्थों में झलकता है।

आरण्यक ग्रन्थों में मरुद्गण के महत्व की सूचना इस तथ्य से भी प्राप्त होती है कि समग्र देवों की कल्पना के रूप में विश्वेदेवाः नामक देव समाष्टि सामने आया, उसमें भी जहाँ कतिपय देवों का व्यक्तिगत नामोल्लेख हुआ है, उनमें मरुद्गण भी हैं।

## उपनिषदों में मरुतों तथा अन्य देवताओं का विवेचनः-

उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रव्यय करने पर उपनिषद् शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है-तत्वज्ञान के लिए गुरू के पास सविनय बैठना। इस तत्वज्ञान के प्रतिपादन के कारण इन ग्रन्थों को भी उपनिषद् कहा जाने लगा। उपनिषदों में मानवीय विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। जिसने मनुष्यों को ब्रह्म-आत्मा, जीवन-मरण, सत्य असत्य, पाप-पुण्य, एकत्व-अनेकत्व, संभूति-असंभूति, विद्या-अविद्या, द्वैत-अद्वैत आदि

मौलिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया। वैदिक इन्द्रादि देवता अपनी उपयोगिता को सुरक्षित रखने में असक्षम सिद्ध हुए। इतना ही नहीं अपितु ब्रह्मज्ञान के समक्ष मरुद्गण के आश्चर्योत्पादक महनीय कार्य नगण्य एवं गौण हो गये।

उपनिषदों में मरुद्गण की प्राकृतिक अवधारणा लुप्तप्राय हो रही थी। यौद्धिक स्वरूप भी दार्शनिक विचारधारा के सम्मुख पल्लवित न हो सकी। आध्यात्मिक परिवेश में युद्ध का ढंग एक नवीन मोड़ ले चुका था। प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में आत्मा-परमात्मा का अन्तर्द्वन्द्व छिड़ गया था। देवासुर संग्राम एक सांकेतिक युद्ध की भांति उद्भूत हुआ। फलतः आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए नवीन शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता थी।

शौनकोपनिषद[1] में उल्लिखित है कि देवासुर संग्राम देवताओं के द्वारा 'ओम्' की सहायता से जीता गया था। इन्द्र ने 'ओम्' नामक शस्त्र को खोजकर उसका प्रयोग असुरों पर किया। इन्द्र ने मरुद्गण, वसु, रुद्र तथा आदित्यों को युद्ध सेनानायक नियुक्त किया किन्तु ओम को प्रत्येक बार प्रथमतः रखा।

नैतिक रूप से औपनिषदिक मरुद्गण का चरित्र निष्कलंक एवं बुराइयों से अछूता था। उन्होंने सूक्ष्मज्ञान एवं तपश्चर्या के द्वारा अपने चरित्र को उच्चकोटि का बना लिया था। मरुद्गण औपनिषदिक ज्ञान से बहुत

---

1 शसौ०उ० पृ० 1-50.

प्रभावित तो नहीं थे लेकिन अपने उच्चतम आत्मिक ज्ञान को बर्द्धित करने के सम्बन्ध में गम्भीर थे। मरुद्गण तथा अन्य देवताओं से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे दैवी शक्ति से युक्त होने के फलस्वरूप वे त्रिकालदर्शी एवं सर्वज्ञ भी हो। ब्रह्मात्म ज्ञान के गहनतम विचार हेतु देवताओं को भी प्रयास करना पड़ा।

कौषीतकि ब्रह्मोपनिषद्[1] में मरुद्गण. को इन्द्र के साथ आत्मज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है। समस्त देवताओं में इन्द्र को ही सर्वप्रथम ब्रह्मज्ञान हुआ। यह अत्यन्त दुष्कर कार्य था। केनोपनिषद् में उल्लिखित है कि अग्नि एवं वायु किस दयनीय दशा में देवताओं के हटठधर्मिता, भ्रम, व्यक्तिगत स्थिति एवं शक्ति को जानने के लिए ब्रह्मा के समक्ष यक्ष की भाँति उपस्थित हुए थे। गरूड़ उपनिषद् में भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।[2]

याज्ञवल्क्य ऋषि ने शतपथ ब्राह्मण में देवताओं को जो महत्व प्रदान किया था उसका अनुमोदन बृहदारण्यक उपनिषद् ने भी किया है। बृ०उ० 3306 देवताओं की बृहत् संख्या में 33 महान् देवताओं की कोटि में मरुद्गण की गणना करता है। मरुद्गण, इन्द्र तथा अन्य देवताओं के आशीर्वाद उन ऋषियों के तुल्य थे जो वेदज्ञ एवं इच्छा विमुक्त थे। ब्रह्मोपनिषद् का यहाँ तक कथन है कि मरुद्गणादि देवों की प्रसन्नतापरमयोगी

---

1 कौ०उ० 4/20 - यावद्ध वा इनद्र एतमात्मान

2. गारूडब्रह्मविद्या प्रवक्ष्यामि या ब्रह्मा विद्या नारदाय प्रोवाच बृहत्सेनाय इन्द्राय इन्दो भरद्वाजाय जीवत्कामेश्यः शिष्येश्यः प्रायच्छत। ग०उ०-1

से न्यून है। धार्मिक लेखों के उपदेश एवं तथ्यों से विदित होता है कि परब्रह्म ही सर्वस्व है एवं वे ही अणुओं में तीनों लोगों के सम्पूर्ण जगत् एवं सर्वथा, सर्वदा जीवों में अनुस्यूत है। वह सर्वजगत्कारणस्वरूप जगद्बीज, समस्त प्राणिसमष्टिरूप, ब्रह्माण्ड देह सच्चिदानन्दधन दिक्काल विराट् पुरुष है। मरुद्गण आदि अन्य देवता प्रकारान्तर से ब्रह्म के विभिन्न रूप हैं।[1] ये व्यक्तिगत देवता विश्व-संचालन में अपने धर्म का निर्वाह प्रकाशनमात्र के लिए करते हैं।[2] तो यह कहना उचित है कि विश्व का सम्पूर्ण कार्य ब्रह्म के क्षयवश हुआ है।[3]

वैदिक देवताओं के मध्य ब्रह्मज्ञानियों के उत्कर्ष एवं प्रजापति, मरुद्गण, इन्द्रादि अन्य देवों का पलायन ही ब्रह्मज्ञान का महत्ता दर्शित करता है। बहुत दिनों से वैदिक देवताओं की आराधना ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों की पूर्ति के उद्देश्य से होती चली आ रही थी। लेकिन अब ऋषिगण इन इच्छाओं का परित्याग कर रहे थे। उन लोगों ने इस प्रयोजन के लिए बलि की एवं तत्सम्बन्धी मूल्यों की सार्थकता को नहीं समझ रहे थे।

ऋषिगण का मुख्य विरोध शास्त्री सम्बन्धी आडम्बरयुक्त खोखलेपन से था। उन्होंने सभी बलियों के साथ ही साथ वैदिक देवताओं का तिरस्कार किया फिर भी वे लोग शास्त्र विधि पद्धति से संलग्न रहे।

1. प०उ० 2/5, मै०उ० 4/12, 13, 5/8.
2 प०उ० 2/9.
3. के०उ० 3/12, 4/1

उपनिषद् ग्रन्थ सत्य ज्ञान के लिए देवलोक के आकर्षक मनोरंजन की ओर से परांगमुख हो गये क्योंकि यह सब आत्मा के दुःख एवं विषाद का आंशिक उपचार मात्र है।[1]औषनिषदकि ऋषियों ने देवों की अवहेलना की एवं उनके लिए देवलोक और स्वयं मरुद्गण भी आकर्षण एवं सुख की वस्तु नहीं रह गये जैसा कि पहले थे। तैत्तिरीयोपनिषद्[2] में उन्होंने मेधा देने के लिए मरुद्गण को अन्य देवों के साथ आमन्त्रित किया और पूजकों के शरीर को अमरतत्व सहने योग्य बनाने का प्रार्थना किया। इस साहित्य[3] में ऐसे प्रसंग आते है कि लोगों अथवा ऋषियों ने युद्ध के प्रयोजन से मरुद्गण को भी बुलाया था।

वाष्कल उपनिषद् में मेधातिथि एवं देवों के मध्य कवित्वपूर्ण तथा दार्शनिक संवाद का वर्णन मिलता है। इसमें देवताओं के साहसिक कार्यो की गणना भी सम्मिलित है। मरुद्गण अपने वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते है कि मै सर्वव्यापी, दयालु, सर्वस्व एवं सर्वज्ञ हूँ।

शौनकोपनिषद् के अनुसार सभी जीव 'ओम्' शब्द पर आधारित है तथा सभी वेद एवं देवता ब्रह्म पर निर्भर हैं। अतएव वैदिक व्यक्तित्व को छोड़कर मरुद्गण भी सर्वोच्च दार्शनिक विचार अर्थात् ब्रह्म में ही समाहित हो गये।

---

1 मु0उ0 1/2/7-
''एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयों ह्थाद्दायन्।
तन्नयन्त्येता सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवाना पतिरेकोडधिवासः।।

2 यश्छन्दसामृषमो . . ... । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु।. .. . तै0उ0 1/9.

3 ऐ0आ0 5/2/1, शा0आ0 12/3

## पुराणों में मरुद्गण और अन्य देव :-

वैदिक वाङ्.मय में पौराणिक युग का आविर्भाव एक नई दिशा का सूचक रहा है। समय तथा समाज की आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन हुआ तथा यह न केवल तत्कालीन सामाजिक धरातल को बदलने तक ही सीमित था, वरन् आध्यात्मिक जीवन की मान्यताओं में भी जबर्दस्त तबदीली हुई। वेदों में जिन अग्नि, इन्द्र, मरुद्गण, वरुण, पूषन्, सोम, उषा, पर्जन्य प्रभृति तैंतीस देवताओं का प्राधान्य था उनका स्थान त्रिदेव ने ले लिया और आगे चलकर प्रतीकात्मक रूप में तैंतीस कोटि देवताओं की अवतारणा होने लगी।

इस प्रगतिशील पौराणिक समाज ने न केवल वेदोक्त दैवी स्थापनाओं को ही अपनी जरूरतों के अनुरूप परिवर्तित किया, प्रत्युत धर्म, अनुष्ठान, व्रत, पूजा, आचार-विचार आदि के कर्मक्षेत्र में भी सैकड़ों नई मान्यताओं को जन्म दिया। पुराणों में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों का वर्णन है-(1) किसी देव या देवी की उपासना तथा उसी को सबसे बड़ी शक्ति मानना तथा अन्य देवों से बड़ा बताना। (2) सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन करना (3) देवों, ऋषियों और महर्षियों की वंशावली तथा उनका जीवन-वृत्त देना (4) तीर्थों, भौगोलिक स्थानों एवं तीर्थयात्राओं आदि का वर्णन। (5) व्रत, जप, उपवास, प्रार्थना, उपासना एवं विविध इष्टियों का अनुष्ठान-सहित वर्णन (6) अवतारवाद, मूर्ति-पूजा एवं देवी-देवताओं में अतिशय श्रद्धा की स्थाना। (7) सगुणोपासना एवं भक्ति-मार्ग की प्रमुखता

का वर्णन (8) दर्शनिक, धार्मिक, एवं आचार-शास्त्रीय महत्वपूर्ण विषयों का विश्लेषण।

पुराणों में मरुद्गण का मानवीयकरण उत्यधिक अपूर्ण है। इनका इन्द्र के परिचर 49 देवों के रूप में उल्लेख किया गया है जो सदा एक गण के रूप में रहते हैं। विष्णु पुराण (1/22/4)में कहा गया है कि प्रजापति ने इन्द्र को मरुतों का स्वामी बनाया (वासवं मरुतामपि)। मरुद्गण की उत्पत्ति तथाउनकी इन्द्र से मैत्री के विषय में लग्भग सभी प्रमुख पुराणों में एक मनोरंजक इतिहास प्राप्त होता है और प्राय: सर्वत्र इस कथा का एक ही रूप है।[1] ब्रह्म पु0 के 124 वें अध्याय में वर्णित यह आख्यान संक्षेप में इस प्रकार है-

अमृत मंथन के उपरान्त हुए देवासुर संग्राम में जब देवों ने असुरों को हरा दिया तो उनकी माता अदिति को अत्यन्त दु:ख हुआ। उसने अपने पति कश्यप की सेवा की और उनके तुष्ट होने पर उनसे एक ऐसे पुत्र होने का वरदान माँगा जो इन्द्र का वध कर सके। कश्यप ने उनको एक व्रत का उपदेश दिया।

इन्द्र को जब यह पता लगा तो वे दत्तचित्त होकर इस ताक में रहने लगे कि कभी दिति का नियम भंग हो तो उसके गर्भ को नष्ट कर दूँ। जब व्रत समाप्ति में कुछ समय रह गया तो एक दिन क्लान्ति के

---

1 भाग0पु0 6/18 विष्णु0पु0 1/21-30-40 मत्स्य0पु0 7वाँअ0 वायु0पु0 67वाँअ0 पद्म0पु0 8वाँअ0।

कारण दिति बिना पैरों को धोये, बाल खोले, पंलग से नीचे सिर किये हुए दिन में ही सो गई। अवसर देखकर इन्द्र ने अपने वज्र से गर्भस्थ बालक के सात टुकड़े कर दिये। किन्तु व्रत के प्रभाव से वे मरे नहीं ओर सात बालक बनकर रोने लगे। इन्द्र ने उनसे रोने के लिए माना किया और अपने वज्र से फिर एक-एक बालक के सात-सात खण्ड कर डाले किन्तु फिर भी वे खण्ड 49 तेजस्वी बालकों के रूप में परिणत हो गये। उन्होंने रोते हुए कहा कि "हे इन्द्र, हम तुम्हारे भाई हैं। तुम हमें क्यों नष्ट करना चाहते हो?

(जो जिघांससि किम् इन्द्र, भ्रांतरो मरुतस्तव। भाग06/18/64) जब इन्द्र ने यह सुना तो बोले यदि तुम मेरे भाई हो तो निर्भय रहो। इसके पश्चात् इन्द्र ने उन्हें अपना साथी बना लिया। लेकिन गर्भ में खण्ड किये जाने पर इन्द्र ने उन्हें रोने से मना किया था, (मारुद:) इसलिए उनका नाम (मरुत:) पड़ गया-

यस्मान् या रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिता।
मरुतो नाम वै नाग्ना भवन्तु सुखभगिन:।।[1]
रुदन्ति बहुरुपाणि मा रुदेत्यब्रवीद् हरि:।
ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महौजस:।।[2]

---

1 मत्स्य0पु0 7/12.
2. ब्रह्म0पु0 124-73

कथा का मुख्य रूप यही है लेकिन विभिन्न पुराणकारों की लेखनियों से निकलकर इसमें थोड़ा बहुत अन्तर भी हो गया है। उदाहरणार्थ ब्रह्मपुराण में इन्द्र को अत्यन्त नीच तथा निर्दय चित्रित किया गया है। दिति का गर्भस्थ बालक भी उसकी भर्त्सना करता है। इसमें कहा गया है कि इन्द्र ऐसा कार्य करता है जिसे कोइ चाण्डाल भी नहीं करना चाहेगा।

किन्तु रामायण के कथा में दिति इन्द्र की सेवा से बहुत प्रसन्न रहती है और एक बार तो वह इन्द्र से यह भी कहती है कि अब मेरा व्रत पूर्ण होने में कुछ ही समय और शेष है, मैंने तुम्हारा वध करने वाले पुत्र की कामना की थी पर अब मैं उसे तुम्हारा मित्र बना दूँगी। तुम उसके साथ त्रैलोक्य का राज्य भोगना।

कथा पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि इसका आधार ऋग्वेद का वह मंत्र है जिसमें मरुद्गण इन्द्र से अपने को भाई बताकर न मारने की प्रार्थना करते हैं (ऋ0 I/170/1) किं न इन्द्र जिधांससि भ्रातरों मरुतस्व)

भागवत और ब्रह्म पुराणों में बिलकुल ये ही शब्द थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पुनरावृत्त हुए हैं। ऋग्वेद के आधार पर ही यह कथा प्रचलित हुआ है। वैदिक संहिताओं में मरुद्गण को रुद्र का पुत्र कहा गया है किन्तु पुराणों से यह धारणा विलुप्त हो गई हैं। नीतिमंजरीकार ने अपने व्याख्या में मरुतों के जन्म की पुराणों में वर्णित कथा को उद्घृत करते हुए रुद्र तथा उमा को कथा के अन्त में बलात् प्रविष्ट करा दिया है दिति के

पुत्र के 49 खण्ड देखकर पार्वती रुद्र से उन्हें जीवित कर देने की प्रार्थना करती है और महेश्वर सबको प्राणदान देकर उनके पिता बन जाते हैं। पार्वती की प्रार्थना पर शिव द्वारा अनेक मुमूर्षु एवं भृत प्राणियों को प्राणदान करने का यह अभिप्राय भारतीय लोक कथाओं में सामान्यतया सर्वत्र उपलबध होता है।

लौकिक साहित्य में मरुतों के सात गणों की वायुमण्डल के विभिन्न विभाजनों के रूप में व्याख्या करने की चेष्टा की गई है। कहा गया है कि मरुतों के ये सात गण क्रमशः ब्रह्ममलोक, इन्द्रलोक, तथा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं मे ंविचरण करते हैं और सातवें गण का नाम वायु है जो सर्वत्र गमनशील है-

मरुता सप्त सपतानां स्थानपाला भविन्त्वमें।
वातस्कन्धा इमें सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक।।
ब्रह्मलोकं चरत्वेकः इन्द्रलोकं तथापरः।
दिव्यवायुरितिख्यातः तृतीयोऽपि महायशाः।
चत्वारस्तु सुरश्रेष्ठ दिशों वै तव शासनात्।।[1]

वायु का मरुतों के एक गण के रूप में यहां उल्लेख महत्वपूर्ण है। मरुत् झंझावात है और शान्त रहने वाला पवन वायु। वायुपुराण के 67वें अध्याय में (श्लोक 12-25) मरुतों के इन सात गणों को वायु के सात

---

1 बाल०पु० 47रु3/5

स्तरों (स्कन्धों) में विचरण करते हुए वर्णित किया गया है। मरुतों का प्रथम गण आवह नामक बात-स्कन्ध में विचरण करता है जो पृथ्वी से लेकर मेघों तक व्याप्त है। मेघों से सूर्य तक वायु का जो प्रवाह नामक बात-स्कंध है उसमें द्वितीय गण विचरण करता है। सूर्य से चन्द्रमण्डल तक व्याप्त वायु के उद्वह नामक बात स्कन्ध विचरण करता है। इसी प्रकार अन्य का भी विवरण प्राप्त है। स्पष्ट है कि ऐसे वर्णनों में वायु ओर मरुत् का पार्थक्य अत्यन्त कठिन हो जाता है।

मरुद्गण के सम्बन्ध में सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य में दो या तीन ही ऐसे उल्लेख है जिनसे उनके शारीरिक रूप का भान होता है। यथा राजा मरुत्त आविक्षित के विशाल यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मरुद्गण उसमें भोजन परोसने का कार्य किया करते थे। यह धारणा श0ब्रा0 (13/5/4/6) के उस वाक्य पर आधारित है जिसमें मरुतों को राजा मरुत्त के यज्ञ का 'परिवेष्टा' बताया गया है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत पुराण में बृहस्पति एवं उसकी पत्नी द्वारा भरद्वाज को त्याग दिये जाने के कारण मरुद्गण ले जाते हैं।

सामान्यत: पुराणों में मरुतों के स्वरूप में उतनी भी शारीरिक विशेषताएँ सुरक्षित नहीं रह सकी हैं जितनी ऋग्वेद में प्राप्त होती हैं। वैदिक संहिताओं की अपेक्षा पुराणों में उनका रूप अधिक सूक्ष्म है। इनकी तुलना में तो वायु का ही मानवीकरण अधिक हुआ है। वायु एक ऐसे देवता हैं जिनका विकास क्रम मरुतों से ठीक उल्टा है।

# षष्ठ अध्याय

## उपसंहार

# उपसंहार

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में वैदिक वाङ्मय में मरुद्गण तथा अन्य देव के साथ सम्बन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन के अन्तर्गत सर्वप्रथम संपूर्ण वैदिक वाङ्मय के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी के बाद देवताओं के वर्गीकरण सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, तथा पुराणों में मरुद्गण तथा अन्य देव के सम्बन्ध में प्राप्त सभी तथ्यों का विश्लेषण किया गया है ।

अब इस समस्त तथ्य-सामग्री की समीक्षा से मरुद्गण के उभरने वाले संश्लिष्ट स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है। मरुद्गण के साथ अन्य देवों के साथ संबंध के मूल में क्या था ? कैसे-कैसे यह कल्पना विकसित हुयी, भारत के किस-भू-भाग से इस विचार का प्रारम्भ हुआ, कौन ऋषि-परिवार इस कल्पना के विकास में सहायक हुये और अन्ततः वैदिक वाङ्मय में मरुतों का क्या स्थान बना तथा आगे पौराणिक

विचारधारा को उसकी क्या देन है ? इन सभी पहलुओं पर अब यहाँ संश्लेषणात्मक रूप से इस अध्ययन के निष्कर्ष प्रस्तुत हैं ।

पूर्व अध्यायों में संकलित पूरी सामग्री का पर्यालोचन करने से यह विदित होता है कि अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में मरुद्गण प्रमुख देव है। इनके स्वरूप के विषय में सर्वप्रथम जो विशेषता अभिलक्षित होती है, वह है उनका जाज्वल्यमान, देदीप्यमान भास्वर रूप । वे सूर्य की रश्मियों जैसे चमकते हैं। तारों से चमकते आकाश सा प्रतीत होते है। कभी वे राजाओं के समान सुदर्शन से दीखते है, तो कभी धनी वरों के समान स्वर्णाभरणों से सुसज्जित शरीर वाले लगते है-

वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैरभि स्वद्याभिस्तन्वः

पिपिश्रे । (ऋ0सं0 V 60/4)

उनके शरीर पर आभूषणों की भरमार है, सिरो पर स्वर्णमुकुट है। वे आभूषणों के कारण ही देदीप्यमान नहीं है, अपितु स्वभावतः प्रभायुक्त है। अपनी इस स्वाभाविक दीप्ति के कारण मरुद्गण अग्नि के

साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हुये हैं। वे अग्नि के समान जाज्वल्यमान हैं। मरुद्गण अग्निश्रियः, अग्निप्राजसः ही नहीं है, अपितु स्वयं अग्नयः ही है। मरुद्गण के स्वरूप में मानों अग्नि ही प्रकट हुआ है।

मरुद्गण सूर्य की दीप्ति से युक्त होकर अपने प्रभावों के साथ दूर-दूर तक फैल गये है। विद्युत के साथ मरुतों का अतीव घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे विद्युत की मुसकान से उत्पन्न हुये है। वे हाथों में विजलियों लिये है। "विद्युतों गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः"। निनाद करते हुये मरुतों के झपटते रथ, अपनी ही विद्युत धाराओं से युक्त अग्नि के समान आगे बढ़ते है। वे विद्युत से दीप्त (विद्युन्महसः) हैं। मरुतों के रथ भी विद्युत के है। मुसकराती विद्युत धाराएं उनका अनुगमन करती है। मरुद्गण स्वयं वायुओं और विद्युतों को प्रश्रय देने वाले है। वे कन्धों पर जो ऋष्टियां धारण करते है, वे विद्युत धाराएं ही है और इसलिये उन्हें "ऋष्टिविद्युतः" कहा गया है। अपने आयुध से पर्वत को मानों कुल्हाड़ी से तोड़कर जल धाराएं बहाते है-

"यत्रा वो विद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा"

मरुद्गण के साथ विद्युत का घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण वृष्टि के साथ भी इनका सम्बन्ध जोड़ देता हैं। वृष्टि लाना ही इनका प्रधान कर्म है। ऋक्संहिता में मरुत् सम्बन्धी ऐसा कम सूक्त ही है, जिसमें इनके वृष्टि-कर्म की ओर संकेत न हो। वृष्टि-कर्म के कारण इन्हें विशेषणों की बहुत बड़ी संख्या प्राप्त हुयी है। मरुद्गण द्वारा बरसाये जलों को भी मरुत्वती: विशेषण से अलंकृत किया गया है। इनके द्वारा की गयी वृष्टि से जल प्राप्त करने वाली एक नदी का नाम ही 'मरुद्वृधा' (मरुतों द्वारा बढ़ाई गई) हो गया है। मरुद्गण के इस वृष्टि-कर्म का आलंकारिक रूप से अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। दानशील, प्रभविष्णु मरुद्गण विदर्थों में घृतयुक्त दुग्ध उड़लते है। वे द्युलोक के कोश को पृथ्वी पर गिरा देते हैं। कहा गया है कि मरुद्गण पर्जन्य को द्यावापृथिवी के बीच छोड़ देते है और सूखी धरती पर वृष्टियां आ पड़ती हैं-

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।

वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनुधन्वना यन्ति वृष्टयः ।।

अपने यजमानों के लिये मरुतों का सबसे बड़ा दान वृष्टि ही है। इस संदर्भ में मरुद्गण के साथ कुछ आख्यान भी जुड़ गये है। आचार्य सायण ने एक आख्यायिका का उल्लेख किया है कि गौतम ऋषि ने पिपासा से पीड़ित होकर मरुतों से जल की प्रार्थना की। तब मरुद्गण ने कूप का उत्सेचन कर ऋषि को जल से तृप्त किया ।[1]

परन्तु मरुतों की लायी वृष्टि साधारण नहीं है, वरन् झंझावात, गर्जन-तर्जन से युक्त है। ओजस्वी मरुतों के प्रयाण से पर्वत काँपते है, वनस्पतियां उखड़-उखड़ जाती हैं। वे मेघों के गर्जन की वाणी उच्चरित करते है। मरुद्गण की यह वृष्टि उनके द्वारा प्रदत्त भेषज भी है।

लेकिन मरुतों का स्वरूप उपर्युक्त विशेषताओं में ही पर्यवसित नहीं हो जाता। मरुद्गण का सम्बन्ध अन्य देवताओं से भी हैं। मरुद्गण का अग्नि सम्बन्धित स्तोता पितरों वाला स्वरूप भी महत्त्वपूर्ण हैं।

इस तथ्य की ओर मैक्डोनेल महोदय ने संकेत अवश्य किया है लेकिन कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया हैं। ऋषि वसुश्रुत आत्रेय एक ऋक् में

---

1. द्र०ऋ० स० I 85/10 पर सायण भाष्य ।

कहते है, "हे रुद्र (अग्नि) ! तुम्हारे सुन्दर दीप्त जन्म के लिए मरुतों ने तुम्हारा परिशोधन किया" ।[1] ऋषि श्यावाश्य आत्रेय अग्नि को सम्बोधित कर कहते हैं, "(अग्ने !) इन प्रबुद्ध मरुतों के स्तोतों से उठ जागों"। इस प्रकार मरुद्गण अग्नि के स्तोता हैं। यह अग्नि मरुतों का पिता भी है।[2] वैदिक देव कल्पना से परिचितों के लिये देवता और उसके स्तोता के पिता-पुत्र सम्बन्ध या दोनों के तादात्म्य में आश्चर्य की बात नहीं है।

सूर्य अग्नि का ही एक रूप है और मरुतों से सम्बद्ध अग्नि की तुलना सूर्य से की गयी है। एक ऋक् में ऋषि ऋषभ वैश्वामित्र ने अग्नि का सूर्य से तादात्म्य और मरुतों को अग्नि के स्तोता के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते है-

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वेमरुतः सुम्नमर्चन् ।

यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभिक्षितीः प्रथयन् त्सूर्योनृन् ।

---

1. द्र०ऋ० सं० V 3/3 ।
2. द्र०ऋ० सं० I 71/8 ।

मरुद्गण की उपमा सूर्य रश्मियों से देने के कारण, उनसे अंधकार दूर करने की प्रार्थना की गयी है। मरुद्गण की तुलना उषस् की किरणों से भी दी गयी है। ऋषि गृत्समद के शब्दों में, ''(ये) शक्तिशाली (मरुद्गण) उषा के समान अपनी ज्योति दीप्ति किरणों को समूह की अरुणाभाओं से अंधकार वाची रात्रि को अनावृत कर देते हैं''। इसी कल्पना की परम्परा में मरुतों को याज्ञियनाम धारण कर, अपने स्वभाव के अनुरुप नवजात शिशु (गर्भत्वम्) का रूप धारण करते बताया गया है। ये सब विचार उषःकाल में समिद्ध होती हुयी सूर्य-सदृश अग्नि से मरुतों का तादात्म्य स्पष्ट करती है।

मरुद्गण सोम से भी घनिष्ठतया सम्बद्ध है। वे सोम के भी परिशोधक है। ऋत के विष्टप (स्थान) इस प्रियतम हविष् (सोम) का पृश्नि-मातरः (मरुद्गण) दोहन करते हैं। इस प्रकार के उल्लेख ऋक्संहिता के नवम तथा अन्य मंडलों में भरे पड़े हैं। अग्नि और सोम के समान मरुद्गण 'स्तुति' से भी सम्बद्ध है। मरुद्गण स्वयं द्युलोक के गायक तथा स्तुति का गान करते हुये के समान है। बृहस्पति को मरुत्वान् कहा गया है

तथा इनके साथ मरुद्गण का स्मरण किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि बृहस्पति के साथ भी मरुतों का सम्बन्ध है ।

स्तोता मरुद्गण यज्ञ के साथ भी जुड़े है और इसलिये यज्ञ संस्था का श्रीगणेश करने वाले पूर्वजों के रूप में स्मृत हुये है। इसी प्रकार मरुतों को (अपने) सामों के द्वारा अंगिरसों के समान कहा गया हैं उन्हें आयु नाम भी दिया गया है। यहां आयु से किन्हीं पूर्वजों का नाम अभिप्रेत होता है। अग्नि का परिशोधन करते हुए मरुतों का भृगुओं के साथ भी स्मरण किया गया है।

इस प्रकार मरुद्गण के स्वरूप के सम्बन्ध में मुख्य है, उनका प्रकाशमय जाज्वल्यमान रूप, झंझावात से युक्त वृष्टि लाने का उनका कार्य, अग्नि की समिद्ध कर यज्ञ की कल्पना को जन्म देकर स्तुतियों द्वारा अग्नि की परिचर्या करने वाले, सोम का परिशोधन करने वाले पूर्वजों वाला रूप तथा इन सबका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध सूर्य, इन्द्र, रुद्र सहित अन्य देवताओं से भी स्फुट होता है।

आचार्य यास्क ने देवगण का विभाजन द्युस्थानीय, मध्यस्थानीय और पृथिवीस्थानीय, इन तीन विभागों में किया और मरुद्गण को मध्य स्थानीय कहा है। परवर्ती भारतीय परम्परा में मरुत् शब्द वायु का ही पर्याय हो गया है।

अवेस्ता में वायु की कल्पना में भी उसे स्वर्ण मुकुट से युक्त, सुनहरे वस्त्र धारण करने वाला तथा स्वर्ण रथ पर सवार बताया है और उग्रता आदि के कारण उनका सम्बन्ध योद्धा-वर्ग से जोड़ा गया है। इसलिये संभवतः अवेस्ता में वायु के रूप में हमें मरुतों की भी कुछ झलक मिल जाती है। परन्तु पहले ही यह स्पष्ट हो चुका है कि 'मरुद्गण' वायु से भिन्न देवता है और वायु उनके स्वरूप का एक अंशमात्र है । इस प्रसंग में यह भी द्रष्टव्य है कि सोमयाग में वायु को प्रातः सवन में स्मरण किया जाता है जबकि मरुद्गण को माध्यन्दिन और तृतीय सवन में ।

हिलेब्राण्ट तथा इ0एच0 मेयर आदि का मत है कि मरुद्गण उत्पातकारी प्रेतात्मा है। इस मत की पुष्टि में कहा गया है कि कभी-कभी मरुतों के साथ रुद्रों या पितरों जैसा व्यवहार होता है। एक अवसर पर इन्द्र

को आहुति देने के बाद उनके लिए एक भिन्न आहुति दी गयी है, और इसका कारण यह बताया गया है कि वास्तविक देवों के समान वे भोक्ता नहीं है। वे हिंसक, यज्ञ-नाशक और मनुष्यों के रोधक बनकर उभरते है। इसे अतिरिक्त उन्हें पक्षिरूप भी माना गया है और पक्षी प्रायः मृतात्मा होते हैं।[1]

विचार करने पर उपर्युक्त मत निराधार ही लगता है। क्योंकि यज्ञ के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध मरुद्गण ने केवल इन्द्र के साथ ही अपितु स्वतंत्र रूप से भी हविष् के अधिकारी है। मरुतों के आयुध को भयंकर अवश्य कहा गया है परन्तु इस प्रकार के छिटपुट उल्लेख तो किसी भी देवता के विषय में मिल सकते हैं। मरुद्गण को ऋषि या राजा का मार्गदर्शन करते हुये बताया गया है। पक्षिरुप में तो सूर्य, इन्द्र आदि को भी माना गया है, अतएव यह तर्क भी अमान्य हैं। मरुद्गण अनिष्ट कारक मृतात्माओं के रूप में नहीं माने जा सकते और कीथ तथा मैकडोनेल ने इस मत को सर्वथा अस्वीकार्य बताया है।

---

1 डॉ0 सूर्यकान्त कृत अनुवाद वैदिक धर्म और दर्शन पृ0 189 ।

ऋग्वेद में रुद्र मूलतः मृत्यु के देवता प्रतीत होते है और मरुद्गण उन्हीं से सम्बद्ध थे। संभवतः इसलिए इनका सम्बन्ध मृतात्माओं से जोड़ा गया। लेकिन वैदिक विकास में रुद्र शनैः-शनैः ही मृत्यु देवता के स्वरूप से विलग हो गये और शीघ्र ही यम ने उनका स्थान ले लिया । केवल इतना ही नहीं प्रत्युत् अन्य कारणों से रुद्र वैदिक देव में अनुचर के स्तर पर पहुँचे हुये प्रतीत होते है। यह अवश्य ही रुद्र एवं मरुतों के मौलिक सम्बन्ध के विघटन के कारण हुआ होगा। परिणामतः वैदिक ऋषियों ने मरुतों की पुराकथात्मक विचारधारा को सर्वथा नवीन महत्त्व प्रदान किया। ऐसा करते हुये, उन्होंने मरुद्गण के मौलिक स्वरूप की विशिष्ट स्थिति उनका एक समान एवम् सुनियोजित समूह पर अतिशय बल दिया। मरुद्गण भाइयों जैसे है, जिनमें न कोई ज्येष्ठ है और न कनिष्ठ, वे अवस्था में समान है तथा वे सदैव एक निश्चित संख्या वाले समूह में विचरण करते है।

मरुद्गण की इन विशेषताओं ने विद्वानों के समक्ष अवश्य ही सैनिक वस्त्रों में सजे सुनियोजित वीरों का चित्र प्रस्तुत कर दिया होगा।

अतः मरुतों के मौलिक स्वरूप की स्मृतियों के विलुप्त हो जाने पर वैदिक ऋषियों ने स्वाभाविक रूप से उन्हें युद्ध के देवता इन्द्र से सम्बद्ध करने की बात सोची होगी ।

इस प्रकार से रुद्र तथा मरुद्गण सम्बन्ध पूर्वतर रूप है तथा उत्तरवर्ती रूप में इन्द्र तथा मरुद्गण का सम्बन्ध विकसित हुआ हैं। मरुद्गण इन्द्र की शक्ति एवं उत्साह सम्बर्धित करते हुये दिखाये गये है। मरुद्गण सामान्यतया इन्द्र युद्ध में सहायता करते थे। ऋग्वेद के कतिपय ऐसे उद्धरणों की ओर पहले ही ध्यान आकृष्ट किया गया है जो यह प्रतिभासित करता है कि इन्द्र एवं मरुत् के पौराणिक सम्बन्ध की कतिपय स्थितियां एक युद्ध-स्वामी एवं उसके सेनापतियों के मध्य वास्तविक ऐतिहासिक परिवर्तनों के प्रतिबिम्ब है। कहीं-कहीं ऋग्वेद में इन्द्र एवं मरुतों के वैमनस्य का स्पष्ट संकेत है। फिर भी यह स्मरणीय रहना चाहिये कि ऐसी घटनायें अवश्य ही बहुत कम घटती रही होंगी।

वैदिक पुराकथा के विकास-सोपान में राष्ट्रीय युद्ध-देव इन्द्र के व्यक्तितत्व पर एक सार्वभौम स्वरूप आरोपित हुआ और परिणामतः इन्द्र वर्षा

के देवता बन गये, इससे मरुतों के स्वरूप में भी तदनुरूप परिवर्तन हुआ। युद्ध-देवता के विश्वस्त सेनापति अब वर्षा के देवता के सहायक बन गये। दूसरे शब्दों में मरुद्गण झंझावात से सम्बद्ध देव समझे जाने लगे। यह वैदिक वाड्मय में प्रस्तुत मरुद्गण के स्वरूप-विकास की अन्तिम दशा है और यही कारण है कि बाद की पुराण कथा में मरुद्गण अधिकांशतः आँधी-तुफान के देव के रूप में चित्रित किये गये है।

लेकिन मरुद्गण का अन्य देवताओं से सम्बन्ध गौरवपूर्ण रहा तथा मदरुगण के योगदान को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। अगस्त्य सूक्तों के हवाले से स्पष्ट किया जा चुका है कि इन्द्र के साथ प्रथमतः मरुतों की प्रतिद्वन्द्विता भी चली है और काफी संघर्ष के बाद ही मरुद्गण पहले इन्द्र के सखा और फिर अनुचर बन गये ।

मरुतों की संख्या का बहुत्व भी इनके किसी न किसी देवता के अनुगामी बनकर रहने में एक बड़ा कारण प्रतीत होता हैं और इसलिए वे रुद्र, अग्नि और इन्द्र के अनुगामी बने। इसी कारण आगे वे 'देवविशः' कहे गये तथा एकाध प्रसंग में वे अहुतादः भी बने ।

परन्तु यह सब होने पर भी ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय परम्परा मरुतों को चित्र आप्त्यः, ऋभवः आदि की तरह कभी भी सर्वथा विस्मृत नही कर पाया। महाभारत, रामायण और पुराणों में मरुद्गण को अन्य देवताओं के साथ जोड़कर विभिन्न कथाओं को रोचक बनाया गया तथा इसमें मरुतों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

# परिशिष्ट

शब्द संकेत निर्देशिका

संदर्भ ग्रन्थ सूची

# शब्द संकेत निर्देशिका

| | | |
|---|---|---|
| अ0को0 | = | अमर कोष |
| अग्नि0 | = | अग्नि पुराण |
| अथर्व0 | = | अथर्ववेद संहिता |
| अनु0 | = | अनुवादक |
| अरण्य0 | = | अरण्य काण्ड |
| इण्डि0मा0 | = | इण्डियन माइथोलॉजी |
| उत्तर0 | = | उत्तरपुराण |
| ऋ0 | = | ऋग्वेद |
| ऋ0प्रा0 | = | ऋग्वेद प्रातिशाख्य |
| ऋ0सं0 | = | ऋग्वेद संहिता |
| ऐ0आ0 | = | ऐतरेय आरण्यक |
| ऐ0ब्रा0 | = | ऐतरेय ब्राह्मण |
| ओ0सं0तै0 | = | ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट |
| कीथ | = | ए0बी0कीथ |
| ग0उ0 | = | गरुड़ उपनिषद् |
| गो0ब्रा0 | = | गोपथ ब्राह्मण |
| छा0उ0 | = | छांदोग्य उपनिषद् |

| | | |
|---|---|---|
| जै0ब्रा0 | = | जैमिनीय ब्राह्मण |
| तै0आ0 | = | तैत्तिरीय आरण्यक |
| तै0उ0 | = | तैत्तिरीय उपनिषद् |
| तै0सं0 | = | तैत्तिरीय संहिता |
| निघ0 | = | निघण्टु |
| निरु0 | = | निरुक्त |
| पद्म0 | = | पद्म पुराण |
| पा0धा0पा0 | = | पाणिनी धातु पाठ |
| प्र0उ0 | = | प्रश्न उपनिषद् |
| प्र0सं0 | = | प्रथम संस्करण |
| पृ0सं0 | = | पृष्ठ संख्या |
| बृ0उ0 | = | बृहदारण्यक उपनिषद् |
| ब्र0उ0 | = | ब्रह्मो उपनिषद् |
| मत्स्य0 | = | मत्स्य पुराण |
| मनु0 | = | मनुस्मृति |
| मै0 | = | ए0ए0 मैकडोनेल |
| मै0उ0 | = | मैत्रायणी उपनिषद् |
| मैक्स0 | = | एफ0 मैक्समूलर |
| मै0सं0 | = | मैत्रायणी संहिता |

| | | |
|---|---|---|
| यजु0 | = | यजुर्वेद |
| या0 | = | यास्क |
| रिली0फि0उ0 | = | रिलीजन ऑफ द फिलॉस्फी एण्ड उपनिषद् |
| वा0सं0 | = | वाजसनेयि संहिता |
| वाच0 | = | वाचस्पत्यम् शब्दकोश |
| वेङ्0 | = | वेङ्कट माधव |
| वै0दे0 | = | वैदिक देवशास्त्र |
| वै0पुरा0 | = | वैदिक पुराकथाशास्त्र |
| वै0मा0 | = | वैदिक माइथालॉजी |
| वै0री0 | = | वैदिक रीडर |
| वै0श0को0 | = | वैदिक शब्द कोश |
| श0ब्रा0 | = | शतपथ ब्राह्मण |
| शां0आ0 | = | शांखायन आरण्यक |
| शु0यजु0 | = | शुक्ल यजुर्वेद |
| शौ0उ0 | = | शौनक उपनिषद् |
| सं0इं0डि0 | = | संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी |

# सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


ऋग्वेद संहिता – पंचम भाग पद सूची वैदिक संशाधन मण्डल पूना।

ऋग्वेद सुबोध भाष्य – हिन्दी दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल सूरत।

ऋग्वेद संहिता – स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव तथा मुद्गल, भाष्य संहिता विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर।

यजुर्वेद संहिता – मूल स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत।

यजुर्वेद संहिता – दयानन्द भाष्य।

यजुर्वेद संहिता – सुबोध भाष्य दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्ड सूरत

अथर्वेद संहिता – मूल श्रीपाद, सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारड सूरत

अथर्वेद संहित – शौनक शाखा, सायणभाष्य सहित, विश्वबन्धु भाग होशियारपुर, विवेकानन्द भारतीय ग्रन्थमाला सीरीज

**अथर्वेद संहिता** – भाषाभाष्य, श्रीपाद सातवलेकर स्वाध्याय मण्ड औध।

**तैत्तरीय संहिता** – स्वाध्याय मण्डल, पारडी।

**जैमिनीय संहिता** – आचार्य रघुवीर परिष्कृत, सरस्वती बिहार।

**कौथुम संहिता** –

**ऐतरेय ब्राह्मण** – सायण भाष्य, डा0 हाग द्वारा सम्पादित बम्बई।

**शतपथ ब्रह्मण** – सायण भाष्य वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

**तैत्तरीय ब्राह्मण** – सायण भाष्य अनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली पूना।

**ताण्ड्व ब्राह्मण** – ताण्ड्य महाब्राह्मण। सायणचार्य विरचित भाष सहितम्, श्री चिन्नस्वामी शास्त्री और पट्टाभिरा शास्त्री संशोधित, चौखम्भा संस्कृत सीरी वाराणसी।

**तैत्तरीय आरण्यक** – प्रकाशित, वि0 इण्डिया कलकत्ता ।

**कठोपनिषद्** – शांकरभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर।

**प्रश्नोपनिषद्** – वाणी विलास प्रेस, संस्करण।

**मुण्डकोपनिषद्** – वाणी विलास प्रेस, संस्करण।

तैत्तीरयोपनिषद् – शांकरभाष्य, गीता प्रेस गोरखपुर।

छान्दोग्योपनिषद् – शांकरभाष्य, गीता प्रेस गोरखपुर।

वृहदारण्यकोपनिषद् – शांकरभाष्य, गीता प्रेस गोरखपुर।

श्वेताश्वेर रोपनिषद् – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना।

केनोपनिषद् – शांकरभाष्य गीताप्रेस, गोरखपुर।

निरुक्तयास्कीमय – वी0के0 राजवाडे भण्डारकर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना।

आश्वलायन श्रौतसूत्र – सम्पादक मंगलदेवशास्त्री गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज वाराणसी।

कात्यायन श्रौतसूत्र – विद्याधर शर्मा, अच्युत ग्रन्थमाला काशी।

शांखायन श्रौतसूत्र – वि0 इण्डिका प्रकाशक कलकत्ता ।

बौद्धायन धर्मसूत्र – श्री गोविन्द स्वामी प्रणीत विवरण टीकासमेत् चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।

गोभिगृह्यसूत्र – प्रकाशक, जयकृष्णदास हरिदास गुप्ता चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी ।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र – हिन्दी व्याकरणाचार्य, डा0 उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा, सस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय

| | | |
|---|---|---|
| | | चौखम्भा, सस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय संस्करण। |
| मनुस्मृति | – | कुल्लूक भट्ट की टीका संहिता, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी। |
| याज्ञवल्क्य स्मृति | – | मिताक्षरा टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस बम्बई। |
| महाभारत | – | गीताप्रेस, गोरखपुर। |
| गीता | – | शांकरभाष्य, गोरखपुर। |
| विष्णु पुराण | – | गीता प्रेस गोरखपुर। |
| ब्रह्मसूत्र | – | शांकरभाष्य, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी। |
| हिन्दूधर्म | – | सरमोनियर विलियम्स हिन्दी रूपान्तर मानसिंह भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली। |
| मृत का अर्थ | – | जे0सी0 वाडिया |
| उपनिषदों की भूमिका | – | राधाकृष्णन राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली। |
| हिन्दू संस्कार | – | डा0 राजबली पाण्डेय, विश्वभारती वाराणसी। |
| अमरकोष | – | अमरसिंह चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी |

वैदिकपदानुक्रमकोष – सम्पूर्ण भाग, विश्वेश्वरानन्द, वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर।

संस्कृतशब्दार्थ० – द्वारिका प्रसाद शर्मा तथा पं0 तारणीश झा रामनारायण लाल, इलाहाबाद।

शब्दस्तोम – महानिधि संस्कृताभिधानम्।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका – डा0 राजवली पाण्डेय।

Macdonell – A History of Sanskrit Literature Moti Lal Banarasi Das, Delhi.

ऋग्वेद संहिता – पं0 रामगोविन्द त्रिवेदी (हिन्दी अनुवाद) इण्डियन प्रेस प्रयाग।

यजुर्वेद संहिता – (सायण भाष्य सहित) चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी।

सामवेद – श्रीपाद दामोदर सातवलेकर प्रकाशन स्वाध्याय मण्डल पारडी।